१ੴ वाहिगुरू जी की फतहि ॥

260

बारहमाहा

स्टीक (सरलार्थ)

(तुखारी व माझ)

सिख मिशनरी कालेज (रजिः)
लुधियाना

सिख साहित्य में बारहमाहा

बाहरमाह पंजाबी का एक प्राचीन लोक-काव्य का रूप है। इस में प्रकृति और प्यार के सु-मिलन का चित्रण होता है। इस में वियोग और विरह की पीड़ा का बड़ा भावनापूर्ण व हृदय-बेधक ढंग से वर्णन करने के पश्चात अंत में प्रीतम के संग मिलाप व उस में से उत्पन्न सुख-आनंद का वर्णन किया गया होता है।

बारहमाह रचना का आधार देसी संवत के बारह महीने हैं। इस में छंद की चाल का ध्यान नहीं रखा जाता। बस शुरू में महीने का नाम होना जरूरी है। बारह महीनों में परिवर्तित होते वातावरण, ऋतुओं के परिवर्तन से मानवीय मन में स्वाभाविक तौर पर परिवर्तन उत्पन्न होता है। जैसे फूलों का खिलना, चांद चढ़ना, बिजली का चमकना, मीठी पवन के झोंके, प्रीतम से बिछुड़ी विरह में डूबी को प्रियतम माही की याद आना। इसलिए आरंभ में बारहमाह की विषय-वस्तु में विरह की मारी नायिका की मानसिक दशा का वर्णन होता है। पहले ग्यारह महीनों में वियोग की दशा का चित्रण करने के पश्चात बारहवें मास में संयोग की स्थिति का वर्णन किया होता है। सुख और आनंद की प्राप्ति का वर्णन किया गया होता है।

बारहमाह का विकास संस्कृत के *खट-ऋतु* के वर्णन से माना जाता है। इसका आधार छः ऋतुएं थीं। खट-ऋतु का वर्णन अपभ्रंश-साहित्य में भी है। बाद में हिंदी साहित्य में *बारहमाह* का प्रयोग किया गया। प्रोफेसर प्यारा सिंघ पदम के अनुसार हिंदी में सब से पुराना बारहमाह जायसी के *पदमावत* में है। सहजे-सहजे यह लोक काव्य काफी प्रचलित हुआ। उत्तरी भारत की लगभग सभी बोलियों में इस को अपनाया गया। पंजाबी, हिंदी, राजस्थानी, गुजराती,

---

अनुवादः स. कुलबीर सिंघ, नई दिल्ली/जुला. 2000

मराठी और बंगाली साहित्य में भी बारहमाह की श्रेष्ठ रचनाएं मिलती हैं।

यह लोक काव्य इतना हरमन प्यारा हुआ कि भक्ति काल के कवियों ने भी इसको अपनाया। उन्होंने इसके विषय वस्तु में परिवर्तन किया। उन्होंने **जीवात्मा को नायक के रूप में चित्रित किया और प्रभु–प्रीतम को नायक के रूप में पेश किया।**

पंजाबी साहित्य का सब से पहला *बारहमाहा* साहिब श्री गुरू नानक देव जी ने रचा। यह श्री गुरू ग्रंथ साहिब जी के तुखारी राग के आरंभ में है। इस प्रकार यह सिख–साहित्य की पंजाबी साहित्य को एक स्वस्थ देन है। यह पहला *बारहमाहा* आज तक अपनी श्रेष्ठता की अनुपम मिसाल है। श्री गुरू अर्जुन देव जी ने भी एक बारहमाहा की रचना की जो माझ राग में अंकित है।

उपरोक्त दो *बारहमाहा* के संबंध में डाक्टर तारन सिंघ अपने विचार इस प्रकार प्रकट करते हैं :

''श्री गुरू ग्रंथ साहिब में लोक–काव्य के *वार* रूप को छोड़ कर और किसी काव्य–रूप में गुरू साहिब की इतनी अधिक रचना नहीं जितना 'समय के विभाजन' पर आधारित काव्य–रूपों में है। पहले, दिन रैणि, थिती, सतवारे, रुतां और बारहमाहा आदि कुछ सुप्रसिद्ध उदाहरणें, समय से संबंधित काव्य–रूपों में से हैं। गुरमत के अनुसार जीवन के श्वास–श्वास को किसी आदर्श के लेखे लगाने का प्रावधान व उपदेश है। इस दुर्लभ मानस जन्म का लाभ तो ही उठाया जा सकता है, यदि जीव एक पल भर भी व्यर्थ न गंवाए। जीव को यह उपदेश दृढ़ करवाने के लिए गुरू साहिब ने बाणी की रचना की।

''आदि ग्रंथ में दो *बारहमाहा* शामिल हैं। गुरू नानक देव जी द्वारा रचित तुखारी राग में बारहमाहाा प्रकृति के वर्णन का सब से उत्तम नमूना है। गुरू अर्जुन देव जी द्वारा रचित *बारहमाहा* माझ, जीव को उपदेशात्मक ढंग से मानव जन्म को सफल करने की प्रेरणा देता है। दोनों ही *बारहमाहों* में जीवात्मा अपने मूल के संग मिलाप के लिए व्याकुल व लालायित हुई नजर आती है। अंतिम शांति प्रभु मिलन में ही दर्शाई है। प्रेमाभक्ति का उत्तम स्वरूप इन दोनों *बारहमाहा* की रचनाओं की अवधारणा है।''

श्री गुरू ग्रंथ साहिब में अंकित *बारहमाहा* के विषय–वस्तु के बारे में प्रो

कुलवंत सिंध जी अपने विचार इस प्रकार प्रकट करते हैं :

''बाहरमाहा तुखारी में बारह महीनों के द्वारा जीव-स्त्री की मन की व्याकुलता का वर्णन किया हुआ है। जीवात्मा अपने मूल से बिछुड़ कर अपनी तुच्छता को महसूस करती है। वह साधना के द्वारा आत्म-शुद्धि के यत्नों में लगी हुई है। उस को पता चलता है कि परमात्मा सर्वशक्तिमान है। उस की प्राप्ति केवल कृपा द्वारा ही हो सकती है। केवल साधना और भक्ति द्वारा उस परमात्मा का वरण किया जा सकता है। प्रभु से बिछुड़ जाने की स्थिति में जीवात्मा व्याकुल हो उठती है। सुहावना मौसम उस को दुखदाई लगने लगता है। चमकती हुई बिजलियों के बरसते बादल डरावने लगने लगते हैं। उड़ते हुए भंवरे उस की विरह की पीड़ा को और अधिक उत्तेजित करते हैं। अकेलापन खाने को पड़ता है। सूनी सेज, शूल की तरह लगती है। स्त्री अकेली है। उस को ढांढस बंधाने वाला कोई नहीं। वह लाखों श्रृंगार भी किसी काम के नहीं समझती क्यों कि ये प्रीतम के दिल पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकते। मौसमों में परिवर्तन हो रहा है। गर्मी के पश्चात सर्दी और फिर ठंडी बर्फ गिरनी शुरू हो जाती है। वनस्पति मुर्झाने लग जाती है। स्त्री मन में विरह की अग्नि और अधिक धधकने लगती है। वह समझती है कि उस को सभी श्रृंगार प्राप्त हो जाएंगे यदि प्रभु प्रीतम दया करके उस को अपनी छाती से लगा ले। वह इन सारे दुखों की निवृत्ति के लिए प्रभु की शरण लेती है। सदगुणों की धारणकर्ता हो कर प्रभु प्रीतम का वरण करती है और उस के सारे दुख दूर हो जाते हैं। महीने, ऋतुएं, थित, घड़ियां, पहरे उसे अच्छे लगने लग जाते हैं। सारा वातावरण आनंददायक हो जाता है। उस को *थिर-सोहाग* की प्राप्ति हो जाती है।

इस *बारहमाहा* में से गुरमत के सिद्धांत का एक तत्व स्पष्ट होता है कि जीव, राम की अंश है। परंतु कुछ कारणों से वह अपने मूल से विछिन्न चुका है। उस के मूल से विछिन्न होने का आधारभूत कारण अहं है। अहं और द्वैतभाव के कारण ही जीव भटक रहा है। वह दुखी हो रहा है। मिलाप की प्राप्ति तो ही है यदि जीव सदगुणों का धारणकर्ता हो और प्रभु को अंदर, बाहर, सारी कुदरत में रमा हुआ देखे। इस मिलाप के सुख की प्राप्ति में प्रभु-कृपा की अत्यंत आवश्यकता है।

बारहमाहा माझः

गुरू नानक देव जी के साहित्यक पदचिन्हों पर चलते हुए गुरू अर्जुन देव जी ने भी लोक काव्य रूपों को संरक्षण दिया। *बारहमाहा* माझ भी तुखारी के बारहमाहा की भांति मानवीय मन की विरह व आध्यात्मिक पद की प्राप्ति के लिए लालायित आत्मा का माया प्रीति का गीत है। बारह महीनों में प्रभु-मिलन की लालसा का वर्णन करके अंत में विरह की मारी आत्मा का मिलाप दर्शाया गया है।

इस *बारहमाहा* का विषय भी आध्यात्मिक है। गुरू अर्जुन देव जी ने इस में उपदेशात्मक आशय को विशेष स्थान दिया है। उन्होंने बताया है कि जीव अपने किये गए कर्मों के कारण स्थान-स्थान पर भटक रहा है और दुखी हो रहा है। यही उसकी विरह की अवस्था है। प्रभु से दूर जा कर वह *परमेसर ते भुलिआ बिआपनि तथे रोग* वाली दशा में विचरण कर रहा है। अंतत: नाम, सतसंग और साधु जनों की शरण द्वारा वह *जह ते उपजी तह मिली* वाली अवस्था की प्राप्ति कर लेता है। इस प्रकार वह जीवन की अंतिम मंजिल पर पहुंच जाता है। गुरू साहिब ने प्रकृति चित्रण को पृष्ठभूमि में रचकर नाम की महिमा, ब्रहम की सर्वव्यापकता और आचार की श्रेष्ठता को दृढ़ करवाया है। इस *बारहमाहा* में भावना से फलसफे की व्यापकता तीव्र है।

(2) संग्रांद (संक्रांति) के बारे में भुलेखे और सिख मत का दृष्टिकोण

तुखारी तथा माझ, दोनों रागों के बारहमाहा के अर्थ समझ लेने के पश्चात यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इन में प्रभु से बिछुड़े हुए व्यक्ति की दशा, प्रभु मिलाप के लिए तीव्र तड़प और प्रभु मिलन के सुख अनंद का ही वर्णन है। इनमें संगरांद के दिन की पवित्रता के बारे में एक शब्द भी अंकित नहीं है। पर आम सिख संगत में एक बहुत बड़ा भ्रम है कि संगरांद यानी संक्रांति का दिन एक पवित्र दिन है। इसी भावना के अधीन ही गुरद्वारों में इस दिन विशेष समारोह व दीवान किये जाते हैं और *महीना सुनने* के लिए आतुर संगत जोर-शोर से आती है। लोगों का विश्वास है कि *महीना सुनने* से सारा माह निर्विघ्न समाप्त हो जाएगा। ऐसे विचार सिख-सिद्धांतों की समझ न होने के कारण फैले हैं। आओ ! पहले संगरांद अथवा संक्रांति के अर्थों को समझें और फिर पवित्र या अपवित्र दिनों के बारे में गुरबाणी से मार्गदर्शन लें।

संगरांद शब्द संस्कृत के *सांक्रांत* का बिगड़ा हुआ रूप है। इस का अर्थ है, ''सूर्य का एक रास में से दूसरी रास में जाना।'' विक्रमी संवत के इन बारह महीनों का संबंध सूर्य की परिक्रमा से है। हर देसी महीने की पहली तारीख को सूर्य एक *रास* छोड़ कर दूसरी में पदार्पण करता है। बारह महीने हैं और बारह ही रास हैं। जो लोग सूर्य देवता के पुजारी हैं, उनके लिए प्रत्येक संगरांद का दिन पवित्र है, क्योंकि उस दिन सूर्य देवता एक रास को छोड़ कर दूसरी में आते हैं।

इस दिन सूर्य देवता के पुजारियों द्वारा विशेष पूजा-पाठ किया जाता है ताकि सूर्य देवता इस नयी रास में रह कर अपने पुजारियों के लिए सारा महीना शुभ व्यतीत करे। **पर हम गुरसिख, सूर्य के पुजारी नहीं, अकाल के पुजारी हैं, एकीश्वर के पुजारी हैं।** फिर हमारा सगरांद से क्या संबंध रह जाता है। हम क्यों इस को पवित्र दिन मानते हैं? हमारे गुरद्वारों में, हमारे अपने प्रचारक रागी ढाडी, कथा-कीर्तन के बाद यह अरदास अथवा प्रार्थना करते हैं कि आज फलां महीने की शुभ संगरांद है। संगरांद का पवित्र दिन जान कर फलां गुरसिख ने दमड़ा अरदास करवाई है आदि। यदि हम सूर्य देवता के पुजारी नहीं तो संगरांद के पुजारी कैसे हो गए ? संगरांद का दिन हमारे लिए कैसे पवित्र हो गया और बाकी दिन कैसे अपवित्र हो गए ? हमारे अंदर यह मनमत क्यों व कैसे घर कर गई ?

बारह माह की बाणी लिखने का प्रयोजनः

यदि हम अपने देश के प्राचीन साहित्य की ओर नजर डालें तो हमारा सारा साहित्य, जीवन की राह की प्रत्येक झांकी से संबंध रखता नजर आएगा। जैसे - घोड़ियां, सुहाग, कामण, सिठणियां, छंद, गिधा, लावां और अलाहणियां आदि। ऋतुओं के बदलने पर भी नई ऋतुओं के नए-नए लोक गीत, होली सावन आदि के गीत आदि गाए जाते हैं। इसी प्रकार कवियों ने देश वासियों के जीवन में नया उल्लास पैदा करने के लिए *वारां*, सीहरफियां, बारहमाह पढ़ने सुनने का प्रचलन कर दिया।

गुरू नानक देव जी ने देश के लोगों में एक नई जीवन शैली का संचार करना था। उन्होंने, गद्य व काव्य के जो छंद पंजाब में अधिकांश प्रचलित थे, उन्हीं का प्रयोग किया। गुरू जी ने तुखारी राग में एक *बारहमाहा* की रचना की। इसी प्रकार गुरू अर्जुन देव जी ने भी माझ राग में *बारहमाहा* की रचना की। इन दोनों *बारहमाहा* का सूर्य की संगरांद से काई संबंध नहीं रखा। यह तो केवल देश में प्रचलित काव्य छंदों में से एक किस्म थी। गुरू जी ने देखा कि इन काव्य छंदों के द्वारा लोगों को फोकट साहित्य पढ़ने का चस्का पड़ चुका है। इसलिए उन्होंने जनमानस की रुचि को फोकट साहित्य की दिशा से मोड़कर, इन बारहमाहा की बाणी द्वारा परमात्मा की बंदगी का उपदेश दिया। हर महीने के

द्वारा जो भी उपदेश है, वह दुनियावी नहीं बल्कि परमात्मा की बंदगी करने का ही है। उन्होंने इन बारहमाह की बाणी में कहीं पर भी यह नहीं कहा कि फलां महीना अच्छा और पवित्र है। या फिर फलां संगरांद अच्छी व पवित्र है। उन्होंने किसी भी दिन को अच्छा या बुरा नहीं माना। यह भेदभाव हमने स्वयं ही अपनी मनमत द्वारा पैदा कर दिया है। गुरू साहिब ने बारहमाहा के बीच की बाणी में 12 शब्दों की रचना नहीं की बल्कि 14 शबदों की रचना की है और *बरहमाहा* की अंतिम पंक्ति में से स्पष्ट आदेश मिलता है :

माह दिवस मूरत भले जिस को नदरि करे (बारह माहा माझ महला ५)

भाव सारे महीने, दिन व मुहूर्त उस मनुष्य के लिए अच्छे हैं जिस पर प्रभु की कृपा है। यथा और प्रमाण इस प्रकार हैं:

–सतिगुरू बाझहु अंधु गुबारु।।
थिती वार सेवहि मुगध गवार।। (बिलावल महला ३ वार)

–सोई दिवसु भला मेरे भाई।।
हरि गुन गाइ परमगति पाई।। (आसा महला ५)

–नानक सोई दिनसु सुहावड़ा, जितु प्रभु आवै चिति।।
जितु दिनि विसरै पारब्रहमु, फिटु भलेरी रुति।। (सलोक महला ५)

–दिनुसु रैणि सभी सुहावणे पिआरे, जितु जपीऐ हरि नाउ।।

(आसा महला ५, बिरहड़े)

–सा वेला, सा मूरतु, सा घड़ी, सो मुहतु सफल है,
मेरी जिंदुड़ीए, जितु हरि मेरा चिति आवै राम।।

(बिहागड़ा महला ४ छंत)

–पूछत न जोतक और थिति वार कछु,
ग्रह और नछत्र की न संका उरधारी है।।

(कबित्त भाई गुरदास पृ ४४८)

–सिख अनंन पंडित दिख ऐसे।
ग्रह तिथि वार, जान नहि कैसे।
एक भरोसा प्रभ का पाए।
तयाग लगन, अरदास कराएं।। (१४)

(गुरबिलास पातशाही ६, अध्याय ६, पृ १३८)

गुरू साहिब तो बाणी में थित, वार व महीनों को अच्छे बुरे होने की मान्यता देने वालों को, इन को पवित्र व अपवित्र कहने वालों को, संगरांद आदि दिनों की पूजा करने वालों को, महामूर्ख का दर्जा दे रहे हैं, गंवार कह रहे हैं। पर हम बिना विचार किए, बिना गुरू की बात को सुने, संगरांद का पवित्र दिन, संगरांद का शुभ दिन कह-कह कर पुकारे जा रहे हैं।

संगरांद संबंधी पड़ चुके वहम और भ्रमः

जब मनुष्य किसी संगरांद को एक विशेष भाग्यशाली शुभ दिन समझता है और धर्म स्थान गुरद्वारे में जाता है, तो वह उस दिन यह आशा करता है कि वरेः **दिन दिहाड़े किसी भले पुरुष के माथे लगूं।** देखो! मनुष्य-मनुष्य में भेदभाव डाला जा रहा है। कोई भला हो गया और कोई बुरा हो गया। जब कि हमें गुरबाणी का उपदेश है कि हम **सब इनसान एक हैं, बराबर हैं,** सभी **उस वाहिगुरू के बनाए हुए बराबर इनसान हैं।**

इतना ही नहीं, फिर हमारी माताएं, बहनें यह मांग करेंगी कि महीने का **नाम किसी मर्द विशेष के मुंह से ही सुनना है,** किसी महिला के मुंह से नहीं। देखें, अपनी स्त्री जाति के लिए, संगरांद के माध्यम से, स्त्री जाति द्वारा ही नफरत की जा रही है। वह स्त्री जिस के बारे में गुरू नानक देव जी ने कहा, ***सो किउ मंदा आखीऐ जितु जंमहि राजान।*** वह स्त्री आज इतनी बुरी हो गई कि उस के मुंह से महीने का नाम सुनना शुभ नहीं समझा जाता। गुरू के सिखो! विचार करो कि स्त्री व मर्द के बीच ऊंच नीच का भेदभाव डालना क्या गुरमत है ? लोगों द्वारा यह भी मांग की जाती है कि गुरद्वारे का ग्रंथी सारी संगत को महीने का नाम सुनाए। जब ग्रंथी सिंघ महीने का नाम संगत में सुनाता है तो सारी संगत के मुंह से वाहिगुरू, वाहिगुरू..................निकलता है। देखें, वैसे चाहे मनुष्य वाहिगुरू का नाम याद न करे, एक महीने का नाम सुन कर, महीने के नाम से डर कर, दिखलावे के लिए वाहिगुरू का नाम उच्चारण करने लग जाता है। हालांकि महीने का नाम ही लिया गया, जिस के द्वारा कोई उपदेश नहीं किया गया। कितनी विचित्र मानसिक दशा है?

यदि मनुष्य को सारे महीने में कोई कष्ट हो जाए तो मनुष्य सहज ही कहता है कि इस बार संगरांद वाले दिन ***फलां चंद्रे व्यक्ति के माथे लगा था।***

कितनी हैरानी की बात है कि जिस वहमप्रस्ती को हटाने के लिए, जिस भेदभाव को दूर करने के लिए, सिख ने गुरद्वारे में जाना है, इस संगरांद के मनाने से उसी वहम-प्रस्ती व भेदभाव के अवगुण उसमें बढ़ते जा रहे हैं।

बाणी-बाणी में भेद:

संगरांद वाले दिन जा कर गुरद्वारे में देखें। संगरांद के श्रद्धालुओं की उस दिन यही आकांक्षा होती है कि आज **महीने वाला शबद सुनाया जाए।** हालांकि सारी बाणी ही अकालपुरख के स्तुतिगायन वाली होने के कारण एक समान दर्जा रखती है। संगरांद के वहम में बाणी-बाणी में अंतर समझा जाता है। **क्योंकि असली नीयत बाणी सुनने की नहीं होती केवल महीना सुनने की होती है।** इतना ही नहीं, श्री दरबार साहिब, अमृतसर में संगरांद वाले दिन जा कर देखें, *आसा की वार* के कीर्तन की समाप्ति पर जब *बारह माह* की बाणी में से महीना सुनाना शुरू किया जाता है तो शुरू में ही शब्द-जेठ, हाड़ यानी ज्येष्ठ, आषाढ़ आदि शब्दों का उच्चारण सुन कर अधिकांश संगत वाहिगुरू, वाहिगुरू कहते हुए चल पड़ती है। सारा शबद सुनने की आवश्यकता ही नहीं समझी जाती है।

इस वहमप्रस्ती का अजीब लाभ दुकानदार उठाते हैं। जहां *बारहमाहा* संबंधी मनघड़ंत कथाएं रची और प्रकाशित की जाती हैं, वहीं श्री गुरू ग्रंथ साहिब जी की बीड़ में दर्ज *बारहमाहा* का आरंभ भी उसी तरह **रंग बिरंगे अलंकरण से किया गया है जिस तरह कि प्रत्येक राग के आरंभ में।** क्या *बारहमाह* बाणी कोई विशेष है और सुखमनी साहिब व *आसा की वार* नहीं? यदि सारी बाणी एक समान ही दर्जा रखती है तो *बारहमाहा* का आरंभ 'राग की तरह' रंग बिरंगे अलंकरण में छापना, क्या बाणी-बाणी में भेद पैदा करना नहीं है?

अन्य वहम और भ्रम:

आज संगरांद वाले दिन प्रदेस नहीं जाना, यात्रा नहीं करनी। सुबह सवेरे हाथ से पैसा नहीं खर्च करना। डाक्टर के पास नहीं जाना आदि अनेकों वहम हैं जो संगरांद को महत्व देने के कारण, गुरू ग्रंथ साहिब की शिक्षाओं के विपरीत चलन के कारण, हमें आ चिपटे हैं।

वास्तविकता क्या है?

हम अकाल अर्थात एकीश्वर के पुजारी हैं। सूर्य के पुजारी नहीं। इसलिए

सूर्य व चंद्रमा से संबंध रखने वाले दिन, जैसा कि सूर्य ग्रहण, चंद्र ग्रहण, मसिया, पूर्णमाशी, संगरांद, चानणा एतवार, दो एकादशियां व दो अष्टमियों का गुरू के सिखों के साथ बिल्कुल कोई संबंध नहीं। हमारे लिए इन की कोई महानता नहीं। क्योंकि हम वाहिगुरू के पुजारी हैं, कृति के नहीं। आज कोई अच्छा काम करना हो तो गुरु का सिख गुरू के आदेश की प्रवाह न करते हुए, संगरांद पूर्णमाशी आदि का दिन ढूंढता है। पंडितों से जा कर साहा अर्थात शुभ दिन निकलवाता है। कुछ दिनों को पवित्र समझता है, और कुछ को अपवित्र। वास्तविकता यह है कि हर मनुष्य में ईश्वर की ज्योति विद्यमान है। हर दिन एक समान है। भाग्यशाली दिन, पवित्र समय वही है जब मनुष्य को परमात्मा याद आता है। कई सज्जन यह कहते हैं कि संगरांद के मनाने से, चलो महीने बाद ही सही, वे गुरद्वारे आ जाते हैं। बाणी सुन लेते हैं। देखो! हम गुरू की मति को छोड़ कर अपनी मति द्वारा अपनी गलती को कैसे छिपाने का प्रयास करते हैं। गुरू साहिब का तो उपदेश है कि मनुष्य हर रोज अमृतबेला में उठ कर, स्नान करके प्रभु की बंदगी करे। हर रोज संगत करे। गुरद्वारे जाए। जो मनुष्य हर रोज परमात्मा का स्तुति-गायन नहीं करता, संगत नहीं करता, यदि वह दिखलावे के लिए महीने बाद गुरद्वारे माथा टेकने चला भी जाता है तो क्या इस प्रकार वह मनुष्य गुरमुख बन जाएगा? क्या परमात्मा की प्राप्ति उसको हो जाएगी? कभी नहीं। क्योंकि मनुष्य को तो श्वास-श्वास सुमिरन करने का आदेश है। जो श्वास बिना सुमिरन के निकल जाता है वह व्यर्थ चला जाता है। इसलिए महीने बाद गुरद्वारे जाना सिख को आलसी व दिखलावे वाला सिद्ध करता है। पर सिख क्या और आलस क्या? यदि वह हर रोज गुरद्वारे नहीं जा सकता तो वह सिख किस तरह कहला सकता है।

अंत में कुछ विनतियां:

(1) **संगरांद के दिन को आम दिनों की भांति समझें**, किसी प्रकार का विशेष महत्व देने की आवश्यकता नहीं। मन में यह विचार न रखें कि आज कोई विशेष दिन है, यदि आज यह हो गया तो सारा महीना ऐसा ही होता रहेगा। इस दिन का किसी प्रकार का भार अपने दिल पर न रखो। संगरांद के दिन से संबंधित सभी वहमों-भ्रमों को जड़ से उखाड़ फेंकें।

(2) गुरद्वारों में संगरांद के संबंध में विशेष सूचना, संगत को देने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं। न ही बोर्डो पर संगरांद, मसिया, पूर्णमाशी आदि की तारीखें व दिन लिखने की आवश्यकता है। इस दिन संगत को गुरू संदेश ही पहुंचाया जाए। यह भी स्पष्ट किया जाए कि ब्राहमणी मत का भार हमें अपने दिलो दिमाग से उतार देना चाहिए और विशुद्ध गुरमत को अपना कर, इन दिनों को महत्व नहीं देना चाहिए।

(3) गुरद्वारों में मसिया, पूर्णमाशी, संगरांद के दिन मनाना विशुद्ध मनमत है। इतिहास व गुरबाणी में कहीं भी इनके महत्व के बारे में वर्णन या आदेश नहीं मिलता है। इन दिनों को धर्म स्थानों में मनाने से संगत में मनमत को फैलाना है। वहमों भ्रमों को पक्का करना है, और गुरू के आदेशों से तोड़ कर उसी अंधकार में फेंकना है जहां से गुरू जी ने हमें बाहर निकाला था। हमें इन दिनों के स्थान पर गुरपुरब व सिख इतिहासिक दिन मनाने चाहिए। इतिहासिक गुरद्वारों में जो मसिया पूर्णमाशी आदि के दिन विशेष समारोह व जोड़ मेले हो रहे हैं, ये वास्तव में उस समय के गुरद्वारों के प्रबंधकों द्वारा, जो आम तौर पर उदासी व सनातनी संप्रदाय के थे, द्वारा मनाने शुरू किए गए थे। उस समय खालसा पंथ जंग-युद्धों के कारण विपत्ति का मारा, जंगलों व मरूस्थलों में टिका हुआ था। अब गुरद्वारे पंथक प्रबंध के अधीन हैं। इसलिए गुरबाणी से मार्गदर्शन ले कर गुरद्वारों में विशुद्ध गुरमत का प्रचार होना चाहिए।

(4) गुरद्वारे के ग्रंथी सिंघ, रागी, ढाडी प्रचारकों की सेवा में विनती है कि वे अरदास करते समय इन शब्दों का प्रयोग न करें कि *संगरांद का शुभ दिहाड़ा जाण के, संगरांद का पवित्र दिन जान कर* आदि। हम आशा करते हैं कि प्रचारक सज्जन इस बीमारी को गले से उतारे के लिए अपने कर्तव्य को पहचानेंगे।

□

(३) तुखारी छंत महला १

बारहमाहा

तू सुणि, किरत करंमा, पुरबि कमाइआ।।
सिरि सिरि सुख सहंमा, देहि सु तू भला।।

पद अर्थः **तू सुणि** – हे प्रभु! (मेरी विनती) सुन। **किरत** – किए हुए। **करंमा** –कर्म। **पूरबि**– पूर्व में, पूर्व जन्मों में। **कमाइआ** – अर्जित, कमाई। **सिरि सिरि** – प्रत्येक जीव के सिर पर। **सहंमा** – सहम, दुःख। **तू देहि** – (जो) तूं देता है। **सु भला** – वह(प्रत्येक जीव के लिए) भला है।

अर्थः हे प्रभु! मेरी विनती सुन। पूर्व कर्मों के अनुसार प्रत्येक जीव के सिर पर जो सुख व दुख झेलने को तूं देता है, वही उचित है, सत्य है।

हरि रचना तेरी, किआ गति मेरी हरि बिनु घड़ी न जीवा।।
प्रिअ बाझु दुहेली, कोइ न बली, गुरमुखि अंमृतु पीवां।।

पद अर्थः **गति** –दशा, हालत। **दुहेली**–दुखी। **बली**– मदद करने वाला। **गुरमुखि**– गुरू के द्वारा, गुरु की शरण पड़ कर।

अर्थः हे प्रभु! मैं तेरी रची हुई रचना में व्यस्त हो गया हूं। मेरी क्या दशा होगी? तेरे बिना, तेरी याद के बिना, एक पल भी जीना कोई जीना है? हे प्रभु प्यारे! तेरे बिना मैं दुखी हूं, इस दुख में से निकलने के लिए कोई मददगार नहीं है। कृपा करो कि गुरू की शरण में आ कर मैं तेरा आत्मिक जीवन देने वाला नाम-जल पीता रहूं।

रचना राचि रहे निरंकारी, प्रभ मनि करम सु करमा।।
नानक, पंथु निहाले साधन, तू सुणि आतम रामा।।१।।

पद अर्थः **निरंकारी रचना**–निरंकार की रचना में। **सु करमा**–श्रेष्ठ कर्म। **पंथु** – रास्ता। निहाल – निहार रही है, देख रही है। **साधन**–जीव स्त्री। आतम रामा – हे सर्व–व्यापक परमात्मा ! अमृतु – आत्मिक

जीवन देने वाला नाम-जल।

अर्थः हम जीव, निरंकार की माया में फंसे हुए हैं। यह काहे का जीवन है? प्रभु को मन में बसाना ही सभी कामों से श्रेष्ठ काम है। यही है मनुष्य के लिए जीवन का मनोरथ।

हे नानक! कहो- हे सर्व-व्यापक परमात्मा! तूं जीव स्त्री की विनय को सुन और उस को अपना दर्शन दे, जीव-स्त्री तेरी राह देख रही है।।१।।

भावः पिछले जन्म में किए हुए कर्मों के संस्कारों के अनुसार मनुष्य इस जन्म में भी माया के मोह में फंसा रहता है और दुखी जीवन व्यतीत करता है। परमात्मा की कृपा से जो मनुष्य गुरू की शरण में आता है, वह उस का आत्मिक जीवन देने वाला नाम जल पी-पी कर आत्मिक आनंद का अनुभव करता है। यही है जीवन मनोरथ।

बाबीहा प्रिउ बोले, कोकिल बाणीआ।।
साधन सभि रस चोलै, अंकि समाणीआ।।

पद अर्थः बाबीहा -पपीहा पक्षी, चात्रिक। **बाणीआ** - मीठा बोल। **साधन**-जीव स्त्री। **सभि**-सारे। **चोलै**-खाती है, आनंदित होती है। **अंकि** - में, अंग के साथ।

अर्थः जैसे पपीहा प्रिउ, प्रिउ बोलता है, वैसे ही कोयल कू-कू की सुरीली व मीठी बोली बोलती है। इसी प्रकार जो जीव स्त्री वैराग्य में आ कर मीठी सुर से प्रभु पति को याद करती है, वह जीव स्त्री प्रभु मिलाप के सभी आनंद व उल्लास का भोग करती है व उस प्रभु के चरणों में टिके रहना चाहती है।

हर अंकि समाणी जा प्रभ भाणी, सा सोहागणि नारे।।
नव घरि थापि महल घरु ऊचउ, निज घरि वासु मुरारे।।

पद अर्थः प्रभु भाणी-प्रभु के संग प्यारी लगती है। **सोहागणि**- अच्छे भाग्य वाली। **नारे**-नारी, जीव स्त्री। **नव घर** -नौ गुल्लकें, नौ इंद्रियों वाले शरीर को। **थापि**- टिका कर, जुगत में रख कर। **ऊचउ**-ऊंचा। **महल घरु** - प्रभु का निवास स्थान, प्रभु के चरण। **निज घरि मुरारे** - प्रभु के स्वै-रूप में, प्रभु के अपने घर में।

अर्थः जब वह प्रभु को अच्छी लगने लग जाती है तो उस की कृपा द्वारा

उस के चरणों में जुड़ी रहती है। वह जीव-स्त्री सौभाग्यवती है। वह अपने शरीर को, शारीरिक इंद्रियों को, जुगत में रख कर प्रभु के अपने स्वरूप में टिक जाती है, और मायावादी पदार्थों के मोह से उठ कर प्रभु का ऊंचा टिकाना प्राप्त कर लेती है।

सभि तेरी तू मेरा प्रीतमु, निसि बासुर रंगि रावै।।
नानक प्रिउ प्रिउ चवै बबीहा, कोकिल सबदि सुहावै।।२।।

पद अर्थः निसि-रात। **बासुर** - दिन। **रंगि** - प्यार में। **रावै** - सुमिरन करती है, आध्यामिक आनंद लेती है। **सबदि**- शब्द के द्वारा। **सुहावै** - सुंदर लगती है।

अर्थः हे नानक! वह जीव-स्त्री प्रभु के प्यार में रम कर, दिन रात उस का सुमिरन करती है और कहती है - यह सारी सृष्टि तेरी रची हुई है। तूं ही मेरा प्यारा पति, सिर का साई है। जैसे पपीहा प्रिउ, प्रिउ बोलता है, जैसे कोयल मीठा बोल बोलती है, वैसे ही वह जीव स्त्री गुर शबद के द्वारा प्रभु का स्तुति-गायन कर के सुंदर लगती है।

भावः नाम की कृपा द्वारा, स्तुति-गायन की कृपा से, मनुष्य अपनी सारी ज्ञान-इंद्रियों को मर्यादा में रख कर, मायावादी पदार्थों के मोह से ऊंचा टिका रहता है। गुरू के शबद के द्वारा उस का जीवन पवित्र हो जाता है।

तू सुणि, हरि रसि भिंने, प्रीतम आपणे।।
मनि तनि रवत रवंने, घड़ी न बीसरै।।

पद अर्थ : हरि रस भिंने - हे रस भीने हरी! **प्रीतम आपणे** - हे मेरे प्रीतम ! **मनि**-(मेरे) मन में। **तनि**-(मेरे) शरीर में। **रवत रवंने** - हे रमे हुए! **न बीसरै**-(मेरा मन) नहीं भुलाता है।

पद अर्थः हे मेरे प्रीतम! हे रस भीने हरी! हे मेरे मन-तन में रमे हुए! तूं मेरी विनती को सुन, मेरा मन तुझे एक पल के लिए भी नहीं भुला सकता है।

किउ घड़ी बिसारी, हउ बलिहारी, हउ जीवा गुण गाए।।
ना कोई मेरा, हउ किसु केरा, हरि बिनु रहणु न जाए।।

पद अर्थः बिसारी-बिसारीं, मैं बिसार सकूं। **हउ**- मैं। **गाए**- गाए, गा कर। **केरा**- का। **रहणु ना जाए** - मन धैर्य में नहीं आता।

अर्थः मैं एक पल भर भी तुझे बिसार नहीं सकता। मैं तेरे से सदा बलि-बलि जाता हूं। तेरे स्तुति-गायन कर कर के, मेरे अंदर आत्मिक जीवन पैदा होता है। परमात्मा के बिना अंत तक निभने वाला न तो कोई मेरा स्थाई साक्षी है, न ही मैं किसी का स्थाई साक्षी हूं। परमात्मा की याद के बिना मेरा मन धीरज में नहीं रहता है।

ओटि गहि हरी चरण निवासे, भए पवित्र सरीरा।।
नानक द्रिसटि दीरघ सुखु पावै, गुर सबदी मनु धीरा।।३।।

पद अर्थः गही – पकड़ी। **द्रिसटि** – नज़र। **दीरघ** – लंबी। **दीरघ दृष्टि** – दूरदृष्टि, विशाल हृदय वाला। **धीरा**– धैर्य वाला।

अर्थः जिस मनुष्य ने परमात्मा का आश्रय लिया है, जिस के हृदय में प्रभु के चरण बस गए हैं, उस का शरीर पवित्र हो जाता है। हे नानक! वह मनुष्य विशाल हृदय वाला हो जाता है। वह आत्मिक आनंद का आभास करते हुए आनंदित होता है। गुरू के शबद(उपदेश) के द्वारा उस का मन धैर्य वाला बन जाता है।।३।।

भावः स्तुति गायन करते-करते मनुष्य के अंदर ऊंचा आत्मिक जीवन पैदा हो जाता है। मनुष्य को विश्वास हो जाता है कि एक परमात्मा ही जीवन के साथ सदा निभने वाला साथी है।

बरसै अंमृत धार, बूंद सुहावणी।।
साजण मिले, सहिज सुभाइ, हरि सिउ प्रीति बणी।।

पद अर्थः बरसै – बरसती है। **अमृत धार बूंद** – आत्मिक जीवन देने वाले नाम जल की बूंदों की धारा। **सहजि**–आत्मिक अडोलता में(टिके हुए को)। **सुभाइ** – प्रेम में (टिके हुए को)।

अर्थः जिस जीव-स्त्री के हृदय रूपी घर में प्रभु के स्तुति गायन की सुहानी बूंदों की धार बरसती है, उस अडोल अवस्था में टिकी हुई को, प्रेम में टिकी हुई को, साजन प्रभु आ मिलता है। प्रभु के संग उस की प्रीति बन जाती है। उस जीव-स्त्री का हृदय प्रभु-देव के टिकने के लिए अमृत बन जाता है।

हरि मंदरि आवै, जा प्रभ भावै, धन उभी गुण सारी।।
घरि घरि कंतु रवै सोहागणि, हउ किउ कंति विसारी।।

पद अर्थः मंदरि – मंदिर में। जा– जब। प्रभ भावै – प्रभु को अच्छा लगता है। धन – जीव स्त्री। उभी– ऊंची (हो हो कर), उतावली, उचक–उचक कर। सारी – संभालती है। घरि घरि – प्रत्येक हृदय रूपी घर में। कंतु– प्रभु पति। रवै– रंग मनाता है। हउ– मुझे। कंति– पति, अर्थात प्रभु पति ने।

अर्थः जब प्रभु को अच्छा लगता है, उस जीव स्त्री के हृदय–मंदिर में वह आ निवास करता है। प्रत्येक भाग्यशाली के हृदय में प्रभु पति आनंद प्रदान करता है, प्रभु पति ने मुझे क्यों भुला दिया है ?

उनवि घन छाए, बरसु सुभाए, मनि तनि प्रेम सुखावै।।
नानक वरसै अमृत बाणी, करि किरपा घरि आवै।।४।।

पद अर्थः उनवि– झुका कर, फिसल कर, नीचे आ कर, तरस करके। घन– हे घन! हे बादल! बरसु –बरसो, वर्षा करके। सुभाए – प्रेम से। सुखावै – सुखदाई लगता है, सुख देता है। घरि – घर में।

अर्थः वह मिन्नतें कर–करके गुरू के सम्मुख ऐसे प्रार्थना करता है – हे घनघटा बन कर, फिसल कर आए बादल! प्रेम से बरसो(हे तरस खा कर आए गुरु पातशाह! प्रेम से मेरे अंदर स्तुति–गायन की वर्षा करो) प्रभु का प्यार मेरे मन में, मेरे तन में आनंद पैदा करता है।

हे नानक! जिस भाग्यशाली हृदय में स्तुति–गायन की बाणी की वर्षा होती है, प्रभु कृपा करके स्वयं वहां पर आकर निवास करता है।।४।।

भावः स्तुति–गायन की कृपा द्वारा मनुष्य का मन विकारों से अडोल रहता है। उस के अंदर हर समय परमात्मा के मिलाप का आकर्षण बना रहता है।

चेतु बसंतु भला, भवर सुहावड़े।।
बन फूले मंझ बारि, मै पिरु घरि बाहुड़ै।।

पद अर्थ : सुहावड़े –सुहावने, सुंदर। बन – जंगल, वनस्पति, वन–फूल, बेल–बूटे इत्यादि। मंझ–में। बारि –खुली जमीन। मै पिरु– मेरा पति, प्रभु। बाहुड़ै–आ जाए।

अर्थ– चैत्र का महीना अच्छा लगता है। चैत्र में बसंत का मौसम भी

प्यारा लगता है। इस महीने खुले मैदानों में वनस्पति को फूल लग जाते हैं और (फूलों पर बैठे हुए) भंवरे, सुंदर लगने लगते हैं। मेरे हृदय-रूपी घर के पास फूल भी खिल गए, मेरा पति प्रभु मेरे हृदय रूपी घर में आ बसे।

पिरु घरि नही आवै, धन किउ सुखु पावै, बिरहि बिरोध तनु छीजै।।
कोकिल अंबि सुहावी बोलै, किउ दुखु अंकि सहीजै।।

पद अर्थः धन–स्त्री। **बिरहि**– बिछोड़े में। **छीजै** –दुखी होता है, टूटता है। **अंबि**– आम(के पेड़ पर)। **अंकि**– हृदय में।

अर्थः जिस जीव स्त्री का प्रभु पति, उसके हृदय रूपी घर में आकर न बसे, उस जीव-स्त्री को आत्मिक आनंद नहीं आ सकता। उस का शरीर प्रभु से बिछुड़ने के कारण, कामादिक शत्रुओं के हल्लों से कमजोर हो जाता है। चैत्र के महीने में कोयल आम के वृक्ष पर मीठे बोल बोलती है। वियोगिन को यह बोल मीठे नहीं लगते बल्कि चुभते हैं, दुखदाई लगते हैं। बिछोड़े का दुख उस से हृदय में सहारा नहीं जाता।

भवरु भवंता फूली डाली, किउ जीवा मरु माए।।
नानक, चेति सहजि सुखु पावै, जे हरि वरु घरि धन पाए।।५।।

पद अर्थः मरु– मौत, आत्मिक मौत। **माए**– हे मां! **वरु**- खसम, पति। **घरि**– हृदय में। **धन**–जीव स्त्री। **पाए** - ढूंढ ले।

अर्थः हे मां ! मेरा मन बावरा, अंदर से खिले हुए हृदय रूपी कमल फूल को छोड़ कर दुनियां के रंग तमाशों के फूलों व डालियों पर भटकता फिरता है। यह आत्मिक जीवन नहीं है, यह तो आत्मिक मौत है।

हे नानक! चैत्र के महीने में, बसंत के मौसम में, यदि जीव स्त्री अपने हृदय रूपी घर में प्रभु पति को ढूंढ ले, तो वह अडोल अवस्था में टिक कर आत्मिक आनंद का आभास करती है।

भावः बसंत का मौसम सुहावना होता है। हर दिशा में फूल खिले होते हैं। कोयल आम के पेड़ पर मीठे बोल बोलती है। पर पति से बिछुड़ी हुई नारी को यह सब कुछ चुभने लगता है। जिस मनुष्य का मन आंतरिक हृदय रूपी कंवल फूल को छोड़ कर दुनियां के रंग तमाशों में भटकता रहता है, उस का यह जीना वास्तव में आत्मिक मौत है। आत्मिक आनंद तब ही है जब परमात्मा

हृदय में आ बसे।

वैसाखु भला, साखा वेस करे।
धन देखै हरि दुआरि, आवहु दइआ करे।।

पद अर्थः साखा- शाखा, नई फूटी हुई टहनियां, डालियां। **वेस करे** - सुंदर कपड़े डाले हुए हैं, नर्म-नर्म कूले पत्ते निकले हुए हैं। **धन-** स्त्री। **देखै-** देखती है, इंतजार करती है। **दुआरि** -दरवाजे पर(खड़ी)। **करे**-कह, कर के।

अर्थः बैसाख का महीना कितना अच्छा लगता है। वृक्षों की टहनियां नव-विवाहित नारी की भांति कूले पत्तों में हार-श्रृंगार करती हैं। इन टहनियों का हार-श्रृंगार देख कर पति से बिछुड़ी नार के अंदर भी पति को मिलने के लिए हूक उठती है। वह अपने घर के दरवाजे पर खड़ी अपने पति की राह देखती है। इसी प्रकार कुदरत-रानी का सहज-श्रृंगार देख कर, उल्लास से परिपूर्ण जीव-स्त्री अपने हृदय-दर पर, प्रभु-पति का इंतजार करती है और कहती है, हे प्रभु पति! कृपा करके मेरे हृदय रूपी घर में बस जाओ।

घरि आउ पिआरे, दुतर तारे, तुधु बिनु अढु न मोलो।।
कीमति कउण करे, तुधु भावां, देखि दिखावै ढोलो।।

पद अर्थः घरि- घर में। **दुतर** - जिस में से तैर कर पार होना कठिन हो। **तारे** - तैर जाऊं, पार हो जाऊं। **अढु-** आधी कौड़ी। **मोलो-** मोल। **तुधु भावां** - यदि तुझे अच्छी लगने लग जाऊं। **देखि** - देख कर, दर्शन करके। **दिखावै-** (मुझे भी) दर्शन करवा दे। **ढोले** - ढोले का, प्यारे पति का।

अर्थः हे प्यारे ! मेरे घर में आओ, मुझे इस कठिन संसार समुद्र में से पार उतारो। तेरे बिना मेरा मूल्य, मेरी कदर आधी कौड़ी भी नहीं है। मित्र-प्रभु! यदि सतगुरू तेरा दर्शन करके मुझे भी दर्शन करवा दे, यदि मैं तुझे अच्छी लगने लगूं तो कौन मेरा मोल डाल सकता है।

दूरि न जाना, अंतरि माना, हरि का महलु पछाना।।
नानक वैसाखी प्रभु भावै, सुरति सबदि मनु माना।।६।।

पद अर्थः जाना -जानता हूं। **माना-** मानती हूं। **महलु** - टिकाना।

पछाना – पहचान लेती हूं। **बैसाखी** – बैसाख के महीने में। **सबदि** – शबद(उपदेश) में। **माना** - पसीज गया, रम गया।

अर्थः फिर तूं मुझे कहीं दूर नहीं लगेगा। मुझे विश्वास होगा कि तूं मेरे अंत:करण में बस रहा है। उस टिकाने की मुझे पहचान हो जाएगी जहां पर तूं बसता है।

हे नानक! बैसाख में कुदरत-रानी का सहज-सुंदर श्रृंगार देख कर वह जीव स्त्री प्रभु-पति के संग मिलाप कर लेती है जिस की सुरति, गुरू के शबद अर्थात उपदेश में जुड़ी रहती है, जिस का मन स्तुति-गायन में ही रम जाता है।।६।।

भावः जिस मनुष्य का मन परमात्मा के स्तुति गायन में रम जाता है, उस को कुदरत की सुंदरता भी परमात्मा के चरणों में ही जोड़े रखने के लिए सहायता करती है।

माहु जेठु भला, प्रीतमु किउ बिसरै।।
थल तापहि सर भार, साधन बिनउ करै।।

पद अर्थः किउ बिसरै – कैसे भूल जाए? नहीं भूलता। **तापहि** - तपते हैं, दमदमाते हैं। **सर**– की भांति। **साधन**– जीव-स्त्री। **बिनउ**– विनती।

अर्थः ज्येष्ठ का महीना उन को ही भला लगता है जिन्हें प्रीतम-प्रभु कभी नहीं भूलता है। ज्येष्ठ के महीने में लू होने के कारण वातावरण भट्ठी की तरह तपने लगता है। इसी तरह कामादिक विकारों की अग्नि से संसारी जीवों के हृदय तपते हैं। उनकी तपिश के अनुभव से गुरमुख रूपी जीव-स्त्री प्रभु चरणों में अरदास करती है।

धन बिनउ करेदी, गुण सारेदी, गुण सारी प्रभ भावा।।
साचै महलि रहे बैरागी, आवण देहि त आवा।।

पद अर्थः सारंदी– संभालती है, याद करती है। **सारी** - मैं याद करती हूं। **प्रभ भावा** – प्रभु को अच्छा लग सकूं। **महलि** – महल में। **बैरागी** – विरक्त, माया से निर्लिप्त। **आवण देहि** – यदि तूं आने की आज्ञा दे तो। **आवा** – मैं तेरे पास आ सकती हूं।

अर्थः उस प्रभु के गुण हृदय में संजोती है, जो इस तपिश से निराले अपने अटल महल में टिका रहता है। उस के सम्मुख जीव-स्त्री विनती करती है - हे प्रभु! मैं तेरा स्तुति-गायन करती हूं, ताकि तुझे भली चंगी लगूं। तुझे भा जाऊं। तुं मुझे आज्ञा दे तो मैं भी तेरे महल में आ जाऊं और बाहरी तपश से बच सकूं।

निमाणी, निताणी हरि बिनु, किउ पावै सुख महली।।
नानक, जेठि जाणै तिसु जैसी, करमि मिलै, गुण गहिली।।७।।

पद अर्थः महली - महिलों में। **करम** - कृपा द्वारा। **गहिली**- ग्रहण करने वाली। **जाणै**- जान ले, जान पहचान कर ले, सांझ डाल ले। **गुण गहिली** -प्रभु के गुण ग्रहण करने वाली।

अर्थः जितने समय तक जीव स्त्री प्रभु से अलग रह कर विकारों की तपिश से निढाल व कमजोर है, तब तक तपिश से बचे हुए प्रभु के महल का आनंद नहीं ले सकती।

हे नानक! ज्येष्ठ की गर्म लौ में प्रभु के स्तुति-गायन को हृदय में बसा लेने वाली जो जीव-स्त्री प्रभु के संग जान-पहचान बना लेती है, वह उस शांत-चित्त प्रभु जैसी हो जाती है। उस की कृपा द्वारा, उस में एकरूप हो जाती है और विकारों की तपिश-लौ से बची रहती है।।७।।

भावः कामादिक विकारों की ज्वाला से संसारी जीवों के हृदय तपते रहते हैं। जो मनुष्य परमात्मा के स्तुति गायन को हृदय में बसा कर परमात्मा के संग गहरी निकटता डाले रखता है, उस का हृदय सदा शांत रहता है। वह मनुष्य विकारों की तपिश-लौ से बचा रहता है।

आसाढु भला, सूरजु गगनि तपै।।
धरती दूख सहै, सोखै अगनि भखै।।

पद अर्थः आसाडु- आषाढ़ का महीना। **गगनि** - आकाश में। **भला**-अच्छा, जोबन में। **सहै** - सहारती है। **भखै** - तपती है।

अर्थः जब आषाढ़ का महीना भर जोबन में होता है, आकाश में सूर्य तपता है। ज्यों-ज्यों सूर्य धरती की नमी को सोखता है, धरती दुख सहारती है। धरती के जीव-जंतु परेशान होते हैं। धरती आग की तरह दमदमाती है। सूर्य

आग की तरह पानी को सुखाता है।

अगनि रसु सोखै, मरीऐ धोखै, भी सो किरतु न हारे।।
रथु फिरै, छाइआ धन ताकै, टीडु लवै मंझि बारे।।

पद अर्थ : **रसु–** जल। **मरीऐ –** मर जाते हैं। **धोखै –**धुख, धुख कर। कराह, कराह कर। **सो–** वह सूर्य। **किरतु न हारे –** कर्तब नहीं छोड़ता। **फिरै–** चक्कर लगाता है। **धन–** कमजोर जिद्द। **ताकै–**देखती है, ढूंढती है। **टीडु–**टिड्डी की भांति अधिकांश रात्रि को आवाज करने वाला झींगुर (बिंडा) कीड़ा। **लवै–** लगाता है, टीं. टीं. करता है। **बारि–** जूह, खुला मैदान। **मंझि बारे –** खुले मैदान में।

अर्थः प्रत्येक जीव की जान कराह–कराह कर दुखी होती है, फिर भी सूर्य अपना कर्तव्य नहीं छोड़ता। अपना कर्तव्य निभाए जाता है। सूर्य का ईश्वर चक्कर चलाता है। कमजोर जान, कहीं छाया का आश्रय लेती है। झींगुर भी बाहर खुले मैदान में, पेड़ की छाया में टीं. टीं. करता रहता है। हर एक जीव तपिश से जान छिपाता फिरता है।

अवगण बाधि चली दुखु आगै, सुखु तिसु साचु समाले।।
नानक, जिस नो इहु मनु दीआ, मरणु जीवणु प्रभ नाले।।८।।

पद अर्थः **बाधि–** बांध कर। **चली–** चलती है। **आगै–** आगे, सामने, जीवन की यात्रा में। **साचु –** सदा अटल प्रभु। **समाले –** हृदय में संभालती है। **इहु मनु –** सब कुछ संभालने वाला मन। **मरणु जीवणु –** हर समय का साथ।

अर्थः ऐसी मानसिक तपिश का दुख उस जीव–स्त्री के सामने भाव, जीवन यात्रा में मौजूद रहता है, जो मंद कर्मों का भार सिर पर बांध कर चलती है। आत्मिक आनंद केवल उस को प्राप्त होता है जो सदा अटल प्रभु को अपने हृदय में सुमिरन द्वारा चित में रखता है। प्रभु का, उस के संग स्थाई साथ बन जाता है। उसको आषाढ़ की कहर भरी तपिश जैसे विकारों की गर्मी का असर नहीं हो सकता।।८।।

भावः जो मनुष्य परमात्मा का नाम अपने हृदय में बसाए रखता है, उस को इस जीवन यात्रा में आषाढ़ की कहर की तपिश जैसी विकारों की तपिश छू

नहीं सकती।।८।।

सावण सरस मना, घण वरसहि रुति आए।।
मै मनि तनि सहु भावै, पिर परदेसि सिधाए।।

पद अर्थः सावणि– सावन के महीने में। **सरस–** रस वाला हो, हरा हो। **घण–** बादल। आए– **आई है। मै भावै –** मुझे भाता है, प्यारा लगता है। **पिर –** पति जी। **सिधाए–** चले गए हैं।

अर्थः आषाढ़ की अति दर्जे की तपिश में घास आदि की हरियाली सूख जाती है। उस तपिश के पश्चात सावन के महीने में घटाएं चढ़ती हैं। पशु-पक्षी, मनुष्य तो कहीं रहे, सूखी घास भी हरी हो जाती है। उसकी हरियाली को देख कर प्रत्येक प्राणी बोल उठता है – मेरे मन ! श्रावण के महीने में वर्षा की ऋतु आ गई, बादल बरस रहे हैं, अब तूं भी हरा हो, तूं भी उल्लास में आ।

परदेस गए पति की नार का हृदय काली घटाओं को देख कर तप उठता है। उल्लास पैदा करने वाले ये तत्व बिछोड़े में उस को दुखदाई प्रतीत होते हैं। विरह में वह ऐसे कहती है – हे मां! ये बादल देख-देख कर मुझे अपना पति मन में, रोम-रोम में प्यारा लग रहा है। पर मेरे पति जी तो परदेस गए हुए हैं।

पिरु घरि नही आवै, मरीऐ हावै, दामनि चमकि डराए।।
सेज इकेली, खरी दुहेली, मरणु भइआ दुखु माए।।

पद अर्थः हावै– सिसकन लेकर । **दामनि–** बिजली । **चमकि–** चमक कर। **खरी–** बहुत । **दुहेली–** दुखदाई । **माए–** मां ।

अर्थः जितना समय तक पति घर में नहीं आता, मैं सिसक-सिसक कर मरे जा रही हूं । बिजली चमक कर बल्कि मुझे डरा रही है । पति के बिछोड़े में मेरी खाली सेज मुझे बहुत दुखदाई लग रही है । पति से बिछुड़ने का दुख मुझे मौत के बराबर लगता है ।

हरि बिनु नीद भूख कहु कैसी, कापड़ु तनि न सुखावए ।।
नानक सा सोहागणि कंती, पिर कै अंकि समावए ।।९।।

पद अर्थः कहु – बताओ। **तनि–** तन पर। **सुखावए –** भाता है। सुखदाई लगता है। **कंती –** कंत, पति वाली। जिसको प्रियतम प्यार करता है। **अंकि –** कौली में। **समावए –** समावै, लीन हो जाती है।

अर्थः जिस जीव स्त्री के अंदर प्रभु पति का प्यार है, विरह की मारी नार की भांति उसको प्रभु के मिलाप के बिना न नींद है, न भूख, उसको तो कपड़ा-लत्ता भी शरीर पर सुखदाई नहीं लगता। शारीरिक सुखों के किसी प्रकार के भी साधन उसके मन को नहीं भाते, उसके मन को आकर्षित नहीं कर पाते।

हे नानक! वही भाग्यशाली जीव-स्त्री प्रभु पति के प्यार की अधिकारी हो सकती है, जो सदा प्रभु की याद में लीन रहती है।।९।।

भावः स्तुति-गायन की कृपा से जिस मनुष्य के हृदय में परमात्मा का प्यार पड़ जाता है, इस प्यार के सामने शारीरिक सुखों का कोई भी साधन उस के मन को आकर्षित नहीं कर सकता।

भादउ भरमि भुली, भरि जोबनि पछुताणी।।
जल थल नीरि भरे, बरस रुते रंगु माणी।।

पद अर्थः भरमि- भटकन में। **भुली -** कुमार्ग पर पड़ गई। **भरि जोबनि -** पूरे जोबन में, पूरे जोबन के समय। **नीर-** पानी से। **बरस रुते -** वर्षा की ऋतु में। **रंगु माणी -** रंग, खुशी, उल्लास का आनंद लेती है।

अर्थः भाद्रव का मास आ गया है। वर्षा ऋतु में खड्डे पानी से भरे हुए हैं। इस दृश्य का आनंद लिया जा सकता है। पर जो स्त्री भर-जोबन में, जोबन के अहं के भुलेखे में दिग्भ्रमित हो गई, उस को पति से विछिन्न होने का पछतावा करना ही पड़ा। उसको नीर-भरे स्थान अच्छे न लगे।

बरसै निसि काली, किउ सुखु बाली, दादर मोर लवंते।।
प्रिउ प्रिउ चवै, बबीहा बोलै, भुइअंगम फिरहि डसंते।।

पद अर्थः निसि- रात्रि के समय। **दादर-** मेंडक। **लवंते -** बोलते हैं, टरटर्राते हैं। **चवै-** बोलता है। **भुइअंगम -** सांप। **डसंते -** डसते हैं।

अर्थः काली रात को वर्षा होती है। मेंडक टरटर्राते हैं। मोर कूकते हैं। पपीहा भी प्रिउ-प्रिउ करता है। पर पति से बिछुड़ी नारी को इस सुहावने रंग से आनंद नहीं आता। उसको तो भाद्रव के माह में यह दिखलाई देता है कि उसे सांप डंक मार रहे हैं।

मछर डंग, साइर भर सुभर, बिनु हरि किउ सुख पाईऐ।।

नानक, पूछि चल गुर अपुने, जह प्रभु तह ही जाईऐ।।१०।।

पद अर्थः साइर– समुद्र, सरोवर, तालाब। **भर सुभर –** लबा-लब भरे हुए।**चलउ–** मैं चलूं। **जह–** जहां। तह – तहां।

पद अर्थः मच्छर डंक मारते हैं। चारों ओर जोहड़ व तालाब वर्षा के जल से लबालब भरे हुए हैं। विरह की मारी नार को इस में कोई आनंद नहीं आ रहा है।

इसी प्रकार जिस जीव-स्त्री को प्रभु पति से बिछुड़ने का अहसास हो जाता है, उस को प्रभु की याद के बिना और किसी रंग-तमाशे में आत्मिक आनंद नहीं प्राप्त होता है।

हे नानक! कहो – मैं तो अपने गुरू की शिक्षा पर चल कर उस की राह पर चलूंगी। जहां पर से प्रभु पति का मेल हो पाएगा, वहीं से ही जाऊंगी।।१०।।

भावः गुरू के दर्शाए हुए मार्ग पर चल कर जिस मनुष्य का मन परमात्मा के स्तुति-गायन में लीन हो जाता है, परमात्मा की याद के बिना और किसी भी रंग-तमाशे में उसको आत्मिक आनंद नहीं प्राप्त होता है।

असुनि आओ पिरा साधन झूर मुई।।

ता मिलीऐ प्रभ मेले, दूजै भाइ खुई।।

पद अर्थः असुनि- असु के महीने में। **पिरा–** हे पति ! **साधन–** स्त्री। **झूर कर–** सुबक-सुबक कर। **ता-** तब ही ! **प्रभ-** हे प्रभु ! **मेले –** मिलाए, यदि तूं स्वयं मिलाए। **दूजै भाइ –** प्रभु के बिना किसी और के प्यार में। **खुई** -खो गई। जीवन के सही रास्ते से हट कर गलत रास्ते पर भटक गई।

अर्थः भाद्रव के त्राटक व हुम्मस(Humidity) के निकल जाने पर असु की मीठी ऋतु में स्त्री के दिल में पति को मिलने की तीव्र इच्छा पैदा होती है। इसी प्रकार जीव स्त्री ने प्रभु-पति के बिछोड़े में कामादिक शत्रुओं के हल्लों के दुख देख लिए हैं। वह अरदास करती है, हे प्रभु प्रियतम! आन बसो मेरे मन में। तुम से बिछुड़ कर मैं सुबक-सुबक कर आत्मिक मौत मर रही हूं। मायावादी पदार्थों के मोह में फंस कर मैं गुमराह हुई पड़ी हूं। हे प्रभु ! तुझे तब ही मिल सकते हैं यदि तूं स्वयं मिलाप करवाए तो !

झूठि विगुती ता पिर मुती, कुकह काह सि फुले।।
आगै घाम पिछै रुति जाडा, देखि चलत मन डोलै।।

पद अर्थः विगुती– ख्वार हुई। **मुती** – छोड़ी हुई, छुट्टड़, परित्यक्ता। **पिर**– हे पति! **कुकह काह** – पिलछी और काई (असु की ऋतु में नदियों आदि के किनारे उगी हुई काई को बूर पड़ता है। पिलछी व काई का फूलना बुढेपे को आंखों के आगे ला कर उदासी पैदा करता है) **आगै**– आगे निकल गई है। **घाम**– तपिश, घुंमा, गर्मी (भाव शरीरिक गर्मी की शक्ति) **पिछै**– उस गुम वातावरण के पीछे पीछे। **जाडा** - सर्दी (भाव शिथिलता)।

अर्थः जब से दुनियां के झूठे मोह में फंस कर मैं ख्वार हो रही हूं, तब से, हे पति! तेरे से बिछुड़ी हुई हूं। पिलछी व काई के सफेद बूर की भांति मेरे केश) सफेद हो गए हैं। मेरे शरीर का ताप आगे निकल गया है, कम हो गया है। उसके पीछे-पीछे शारीरिक शिथिलता आ रही है। यह तमाशा देख कर मेरा मन घबरा रहा है क्योंकि अभी तक तेरा दीदार नहीं हो पाया।

दहदिसि साख हरी हरीआवल, सहजि पकै सो मीठा।।
नानक असुनि मिलहु पिआरे, सतिगुर भए बसीठा।।११।।

पद अर्थः सहजि–अडोलता में। **बसीठा** – वकील, बिचौला।

अर्थः काई, पिलछी की दशा देख कर तो मन डोलता है। पर हर दिशा में वनस्पति की हरी शाखाओं की हरियाली देख-देख कर यह धैर्य बंधता है कि अडोल अवस्था में जो जीव दृढ़ रहता है, उसी को प्रभु मिलाप की मिठास व खुशी प्राप्त होती है।

हे नानक! असु की मीठी ऋतु में तूं भी अरदास करके कह - हे प्यारे प्रभु ! कृपा कर, गुरू के द्वारा मुझे मिल जा।।११।।

भावः जो मनुष्य दुनियां के झूठे मोह में फंस जाता है, वह परमात्मा के चरणों से बिछुड़ा रहता है। पर जो मनुष्य परमात्मा की कृपा से गुरू की शरण पड़ता है, वह माया के मोह के झटकों से अडोल हो जाता है और उसको प्रभु के मिलाप का आनंद प्राप्त होता है।

कतक किरतु पइआ, जो प्रभ भाइआ।।
दीपकु सहजि बलै, तत जलाइआ।।

पद अर्थः कतकि- कार्तिक(के महीने) में (जब किसान जीरी, चावल, मक्की आदि, श्रावण की फसल काट कर घर ले आता है)। **किरतु-** किये गए कर्मों के संस्कारों का भंडार। **पइआ** - मिल जाता है। **जो** - जो जीव। **प्रभ भाइआ** - प्रभु को अच्छा लगने लगता है। **दीपकु** - दीवा(आत्मिक जीवन की सूझ देने वाले प्रकाश का दीपक)। **सहजि** - आत्मिक अडोलता में। **बलै-** जग जाता है। **तति-** तत्व ने, प्रभु के संग गहरी जान-पहचान ने। **जलाइआ** - जगा दिया।

अर्थः हे भाई! जैसे कार्तिक के महीने में किसान को जीरी, चावल, मक्की आदि श्रावणी फसल की हुई कमाई मिल जाती है, वैसे प्रत्येक जीव को अपने किये गए कर्मों का फल, मन में एकत्र हुए संस्कारों के रूप में मिल जाता है।

हे भाई ! (अपने किये गए सद्कर्मों के अनुसार) जो मनुष्य परमात्मा को प्यारा लग जाता है उस के हृदय में आत्मिक अडोलता के कारण आत्मिक जीवन की सूझ देने वाले प्रकाश का दीपक जग जाता है।

दीपक रस तोलो, धन पिर मेलो, धन ओमाहै सरसी।।
अवगण मारी मरै, न सीझै, गुणि मारी ता मरसी।।

पद अर्थः-दीपक रस तोलो- आत्मिक जीवन की सूझ व आनंद का तेल। **धन** - जीव स्त्री। **उमाहै** - उत्साह में। **सरसी** - स-रसी, आनंद मग्न होती है। **मारी** - आत्मिक मौत मार दिया। **मरै** - आत्मिक मौत मर जाती है। **सीझै-** कामयाब होती है। **गुणि-** गुण ने, प्रभु के स्तुति-गायन ने। **मारी** - विकारों की ओर से मार दी। **मरसी** - विकारों की ओर से बची रहेगी।

अर्थः यह दीवा उस के अंदर प्रभु के संग गहरी जान पहचान ने जगाया हुआ होता है। उस के अंदर आत्मिक जीवन की सूझ देने वाले प्रकाश के आनंद का मानो, दीपक में तेल जल रहा है। वह जीव स्त्री उत्साह में आत्मिक आनंद का अनुभव करती है।

हे भाई! जिस जीव-स्त्री के जीवन को विकारों ने मार मिटाया है, वह आत्मिक मौत मर गई है। वह जीवन में कामयाब नहीं होती। पर जिस जीव स्त्री को प्रभु के स्तुनिगायन ने विकारों से मारा है, वह ही विकारों से बची रहेगी।

नामु भगति दे निज घरि बैठे, अजहु तिनाड़ी आसा।।
नानक मिलहु कपट दर खोलहु, एक घड़ी खट मासा।।१२।।

पद अर्थः दे– देता है। **घरि–** घर में। **निज घरि –** अपने घर में, अपने हृदय रूपी घर में। **तिनाड़ी–** उनकी। **नानक –** हे नानक ! **कपट –** किवाड़। **कपट दर –** दरवाजे के किवाड़। **दर -** दरवाजा। **खटु–मासा -** छः महीने का समय।

अर्थः हे नानक! जिन को परमात्मा अपना नाम प्रदान करता है, अपनी भक्ति प्रदान करता है, वह विकारों की दिशा में भटकने की जगह पर अपने हृदय–रूपी घर में टिके रहते हैं। उनके अंदर सदा ही प्रभु मिलन की आकांक्षा बलवती रहती है। वे सदा प्रार्थना करते हैं - हे पातशाह! हमें मिल। हमारे अंदर से बिछोड़े डालने वाले किवाड़ खोल दे, तेरे से एक घड़ी व पल भर का बिछोड़ा छः महीने के बिछोड़े के समान प्रतीत होता है।।१२।।

भावः जिस मनुष्य को परमात्मा अपने स्तुति–गायन की निधि प्रदान करता है, उस के अंदर आत्मिक जीवन की सूझ वाले प्रकाश का, मानो, दीपक जग उठता है। वह मनुष्य परमात्मा की याद से एक पल का बिछोड़ा भी सहार नहीं सकता।

मंघर माहु भला, हरि गुण अंकि समावए।।
गुणवंती गुण रवै, मै पिरु निहचलु भावए।।

पद अर्थः गुण– गुणों के कारण, स्तुति–गायन करने से। **अंकि –** हृदय में। **हरि समावए –** प्रभु आ बसता है। **गुण रवै –** जो(जीव–स्त्री प्रभु के गुण याद करती है। **मै पिरु–** मेरा पति, प्यारा प्रभु पति। **निहचलु–** सदा अटल रहने वाला। **भवए –** (उस को) प्यारा लगता है।

अर्थः प्रभु के स्तुति–गायन की कृपा से जिस जीव स्त्री के हृदय में प्रभु आ बसता है, उस को माघ का महीना अच्छा लगता है।

अटल प्यारा प्रभु पति उन गुणों वाली जीव स्त्री को प्यारा लगता है जो उस के गुण याद करती रहती है।

निहचलु चतुरु सुजाणु बिधाता, चंचलु जगतु सबाइआ।।
गिआनु धिआनु गुण अंकि समाणे, प्रभ भाणे ता भाइआ।।

पद अर्थः बिधाता– विधाता, सृजनकर्ता। **चंचलु – नाशवान। मथाइआ** –सारा। **गिआनु – प्रभु के संग जान पहचान। धिआनु– सुरति का टिकाव। गुण**– प्रभु का स्तुति-गायन। **प्रभ भाणे** – जब प्रभु की इच्छा हुई तो तब ही।

अर्थः और सारा संसार तो नाशवान है, एक सृजनहार ही, जो चतुर और बुद्धिमान है, अटल है। जिस जीव स्त्री की प्रभु के संग गहरी निकटता हो जाती है, उस की सुरति प्रभु चरणों में टिक जाती है। प्रभु के गुण उस के हृदय में आ जाते हैं। प्रभु की रज़ा के अनुसार यह सब कुछ उस जीव स्त्री को अच्छा लगने लग जाता है।

गीत नाद कवित कवे सुणि, राम नाम दुख भागै।।
नानक साधन नाह पिआरी, अभ भगती पिर आगै।।१३।।

पद अर्थः गीत नाद कवे– प्रभु के स्तुति गायन के गीत, बाणी काव्य। **सुणि** – सुन कर। **नामि**– नाम में (जुड़ने से)। **नाह पिआरी** – खसम प्रभु को प्यारी। **अभ**– हृदय। **नाह**– नाथ, खसम। **अभ भगती** – अंतःकरण का प्यार।

अर्थः प्रभु के स्तुति गायन के गीत, बाणी काव्य सुन-सुन कर प्रभु के नाम में जुड़ कर, उस का और सारा दुख दूर हो जाता है।

हे नानक! वह जीव स्त्री प्रभु पति को प्यारी हो जाती है। वह अपना दिल से अंतःकरण का प्यार प्रभु के सम्मुख भेंट करती है।।१३।।

भावः जो मनुष्य प्रभु के स्तुति गायन में टिका रहता है, परमात्मा के संग उस की पक्के प्यार की गांठ बंध जाती है, संसार का कोई भी दुख उस पर अपना असर नहीं डाल सकता।

पोखि तुखारु पड़ै, वणु त्रिणु रसु सोखै।।
आवत की नाही, मनि तनि वसहि मुखै।।

पद अर्थः पोखि- पौष(के महीने) में। **तुखारु** – कोहरा। **रसु**– नमी। **सोखै**– सुखा देता है। **वसहि** – तूं बसता। **मुखे**– मुख में।

अर्थः पौष के महीने में बर्फीला कोहरा पड़ता हो, बर्फ गिर रही हो तो वह वन को, घास को, प्रत्येक वनस्पति के रस को सुखा देता है। प्रभु की याद

को भुला देने से जिस मनुष्य के भीतर कोरापन बलवती होता है, वह उस के जीवन में से प्रेम रस सुखा देता है। हे प्रभु! तूं आ कर मेरे मन में, तन में, मेरे मुंह पर क्यों नहीं बस जाता ? ताकि मेरा जीवन रूखा न हो जाए।

मनि तनि रवि रहिआ जगजीवनु, गुर सबदी रंगु माणी।।
अंडज जेरज सेतज उतभुज, घटि घटि जोति समाणी।।

पद अर्थः जग जीवनु– संसार का जीवन, संसार का आश्रय।**माणी**– की अनुभूति करता है। **अंडज**– अंडे से पैदा होने वाले जीव। **जेरज** – जेर(झिल्ली) से पैदा होने वाले। **सेतज**– पसीने से पैदा होने वाले। **उतभुज** - धरती में से उगने वाले। **घटि घटि** - प्रत्येक हृदय में।

अर्थः जिस जीव के मन में, तन में सारे संसार का आश्रय प्रभु आ बसता है, वह गुरू के शबद में जुड़ कर प्रभु के मिलाप के आनंद की अनुभूति करता है। उसको चारों खाणियों के जीवों में, प्रत्येक हृदय में, प्रभु की ही ज्योति समाई हुई दिखलाई देती है।

दरसनु देहु दइआपति दाते, गति पावउ मति देहो।।
नानक रंगि रवै रसि रसीआ, हरि सिउ प्रीति सनेहो।।१४।।

पद अर्थः गति– ऊंची आत्मिक अवस्था। **पावउ** –पावउं, मैं पा लूं, प्राप्त कर लूं। **मति**– अक्ल। **रंगि** – प्यार में। **रसि**– रस द्वारा, अनंद द्वारा। **रसिआ** – प्रेमी। **सनेहो** – प्यारा।

अर्थः हे दयालु दातार प्रभु! मुझे अपना दर्शन दो। मुझे अच्छी बुद्धि प्रदान करो जिसके फल से मैं उच्च आत्मिक अवस्था प्राप्त कर सकूं और मैं तुझे हर स्थान पर देख सकूं।

हे नानक! जिस मनुष्य की प्रीति, जिस का प्यार परमात्मा के संग बन जाता है, वह प्रेमी प्रभु के प्यार में जुड़ कर, उस के गुण, आनंद से याद करता है।।१४।।

भावः परमात्मा की याद भुला देने से मनुष्य के अंदर कोरापन बलवती हो जाता है। वह कोरापन उस के जीवन में से प्रेम रस को सुखा देता है। परमात्मा का स्तुति गायन ही मनुष्य के अंदर ऊंची आत्मिक अवस्था पैदा करता है और कायम रखता है।

माघि पुनीत भई, तीरथु अंतरि जानिआ।।
साजन सहजि मिले, गुण गहि अंकि समानिआ।।

पद अर्थः माघि– माघ(महीने) में। **पुनीत–** पवित्र स्थान(खास तौर पर वह) जो किसी नदी आदि के समीप हो। **अंतरि–** हृदय में। **जानिआ** - पहचान लिया, ढूंढ लिया। **सहजि** – सहज में, अडोल अवस्था में। **गहि–** ग्रहण करके।

अर्थः माघ के महीने में लोग प्रयाग आदि तीर्थों पर स्नान करने में पवित्रता मानते हैं। पर जिस जीव ने अपने हृदय में ही तीर्थ को पहचान लिया है उस का जीवन पवित्र हो जाता है। यदि जीव, अपने हृदय में परमात्मा के गुण बसा कर, उस की रचना में लीन होता है, वह अडोल अवस्था में टिक जाता है, जहां उस को साजन प्रभु मिल जाता है।

प्रीतम गुण अंके, सुणि प्रभ बंके, तुधु भावा सरि नावा।।
गंग जमुन तह बेणी संगम, सात समुंद समावा।।

पद अर्थः अंके – अंक में, हृदय में। **सुणि–**(तेरे गुण) सुन कर। **बंके–**सुंदर। **सरि–**सरोवर में, तीर्थ पर। **नावा–**ना:वां, स्नान कर लेता है। **तह** – उस आत्मिक अवस्था में। **बेणी संगम** - त्रिवेणी, गंगा यमुना सरस्वती तीनों नदियों का मिलन स्थल।

अर्थः हे सुंदर प्रीतम–प्रभु! यदि तेरे गुण मैं अपने हृदय में बसा कर, तेरा स्तुति–गायन सुन कर, तुझे भाने लग जाऊं, तुझे अच्छा लगने लगूं, तो मैंने तीर्थ पर स्नान कर लिया समझो। तेरे चरणों में लीन होने वाली अवस्था में ही गंगा जमुना सरस्वती तीनों नदियों का मिलन स्थल है, त्रिवेणी है - वहां पर ही मैं सातों समुंद्र समाए हुए मानता हूं।

पुंन दान पूजा, परमेसुर जुगि जुगि एको जाता।।
नानक माघि महा रस हरि जपि, अठसठि तीरथ नाता।।१५।।

पद अर्थः जपि– जाप करके। **जाता** – गहरी निकटता बना ली।

अर्थः जिस मनुष्य ने हर एक युग में व्यापक परमेश्वर के संग सघनता बना ली है, उस ने तीर्थ स्नान आदि के सारे पुन्य कर्म, दान व पूजा कर्म कर लिए हैं।

हे नानक! माघ के महीने में तीर्थ स्नान आदि के स्थान पर जिस ने प्रभु

के नाम का सुमिरन करके प्रभु नाम का महा रस पी लिया, उस ने अठाहठ तीर्थों का स्नान कर लिया है।।१५।।

भावः माघी वाले दिन लोग प्रयाग आदि तीर्थों पर स्नान करने में पवित्रता मानते हैं। पर परमात्मा का स्तुति गायन हृदय में बसाना ही अठाहठ तीर्थों का स्नान है।

फलगुनि मनि रहसी, प्रेमु सुभाइआ।।
अनदिनु रहसु भइआ, आपु गवाइआ।।

पद अर्थः मनि – मन में। **रहसी**– खुश हुई, खिल पड़ी। **सुभाइआ** – अच्छा लगा। **अनदिनु**– हर रोज। **रहसु** –उल्लास, आनंद। **आपु** – अपनत्व की भावना।

अर्थः सर्दी के मौसम की करड़ी सर्दी के पश्चात बाहर घूमने पर फाल्गुन के महीने में लोग होलियों के रंग तमाशों के द्वारा खुशियां मनाते हैं। पर जिस जीव स्त्री को अपने मन में प्रभु का प्यार मीठा लगा, उस के मन में असल आनंद पैदा हुआ है, जिस ने अपनत्व की भावना को गंवाया है, उस के अंदर हर समय ही उल्लास बना रहता है।

मन मोहु चुकाइआ, जा तिसु भाइआ, करि किरपा घरि आओ।।
बहुते वेस करी पिर बाझहु, महली लहा न थाओ।।

पद अर्थ : मन मोहु – मन का मोह, मन में पैदा हुआ माया का मोह। **तिसु** – उस प्रभु को। **आओ** – आगमन, निवास। **घरि** – हृदय रूपी घर में। **करी** –कहना। मैं करती हूं। **महली** – प्रभु के घर में, प्रभु के चरणों में। **लहा न** – मैं नहीं ढूंढ सकती। **थाओ** - स्थांन।

अर्थः पर अपनत्व की भावना को गंवाना कोई आसान खेल नहीं है। जब प्रभु स्वयं ही कृपा करता है तो जीव अपने मन में से माया का मोह मिटाता है। प्रभु भी उस पर कृपा करके उस के हृदय रूपी घर आ कर प्रवेश करता है।

प्रभु के संग मिलाप के बिना ही मैंने कई (धार्मिक) श्रृंगार(बाहर से दिखने वाले धार्मिक काम) किये हैं पर उस के चरणों में मुझे आश्रय नहीं मिल पाया।

हार डोर रस पाट पटंबर, पिरि लोड़ी सीगारी।।

नानक मेलि लई गुरि आपणै, घरि वरु पाइआ नारी।।१६।।

पद अर्थः पाट पटंबर – पाट, पट-अंबर, रेशम के कपड़े। **पिरि** –पिया ने। **लोड़ी**- पसंद कर ली। **गुरि आपणै** – अपने गुरू के द्वारा। **घरि** – हृदय रूपी घर में। **वरु**- खसम प्रभु।

अर्थः हां, जिस को पति प्रभु ने पसंद कर लिया, वह सारे हार-श्रृंगारों, रेशमी कपड़ों से श्रृंगारी गई।

हे नानक! जिस जीव स्त्री को प्रभु पति के अपने गुरू के द्वारा अपने साथ मिला लिया, उस को हृदय रूपी घर में ही पति-प्रभु मिल गया।।१६।।

भावः जो मनुष्य गुरू की शरण पड़ कर स्तुति-गायन के द्वारा अपने अंदर से अपने अपनत्व को दूर करता है, उस को अपने अंदर बसने वाला परमात्मा मिल जाता है। पर इस अपनत्व की भावना को दूर करना कोई आसान काम नहीं। इसे वही दूर करता है जिस पर परमात्मा कृपा करे।

बे दस माह, रुती, थिती, वार भले।।
घड़ी, मूरत, पल, साचे आए सहजि मिले।।

पद अर्थः बे- दो। **बे दस** - दो व दस, बारह। **बे दस माह** - बारह ही महीने। **रुती** – रुतीं। **थिती** – थित, तिथियां (चंद्रमा के बढ़ने व कम होने से एकम, दूज, तीज आदि)। **वार** - दिन। **भले** - सुलक्षण, भाग्यवान, अच्छे। **मूरत** – मुहूर्त। **साचे** - सदा अटल प्रभु जी (आदर के लिए बहु वचन)। **आए** – आइ, आ कर। **सहजि**- अडोल अवस्था में, अडोल हुए हृदय में।

अर्थः जिस जीव स्त्री के अडोल हुए हृदय में सदा अटल रहने वाला परमात्मा आ टिकता है, उस को बारह ही महीने सारी ऋतुएं, सारी घड़ियां, पल, सारे मुहूर्त व पल अच्छे प्रतीत होते हैं। उस को किसी संगरांद, मसिया आदि की ही पवित्रता का भ्रम व भुलेखा नहीं रहता है।

प्रभ मिले पिआरे, कारज सारे, करता सभ बिधि जाणै।।
जिनि सीगारी, तिसहि पिआरी, मेलु भइआ रंगु माणै।।

पद अर्थः सारे - सिरे चढ़ गए, सफल हो गए। **बिधि**- ढंग, युक्ति। **जिनि**- जिस(प्रभु) ने। **सीगारी** – संवार दी, मन पवित्र कर दिया। **तिसहि** – उसी(प्रभु) को। **रंगु** –आत्मिक आनंद।

अर्थः वह जीव स्त्री किसी काम को शुरू करने के लिए कोई खास मुहूर्त नहीं ढूंढती। उसको यह विश्वास होता है कि जब प्यारा प्रभु मिल जाए, परमात्मा का आश्रय ले लेने से सभी काम रास आ जाते हैं। करतार ही जीव को सफलता देने के लिए सभी तरह के साधन बनाना जानता है। पर यह आस्था, श्रद्धा का आत्मिक सहज परमात्मा स्वयं ही देता है। प्रभु ने स्वयं ही जीव स्त्री की आत्मा को संवारना है और स्वयं ही उस को प्यार करना है। उस की कृपा से ही जीव स्त्री का प्रभु पति के संग मेल होता है और वह आत्मिक आनंद का आभास करती है।

घरि सेज सुहावी, जा पिरि रावी, गुरमुखि मसतकि भागो।।
नानक अहि निसि रावै प्रीतमु, हरि वरु थिरु सोहागो।।१७।।१।।

पद अर्थः घरि– हृदय में। **पिरि**– पिया ने। **रावी**– मिला ली। **मसतकि** – माथे पर। **अहि** –दिन। **निसि** – रात। **थिरु** – सदा कायम, अटल। **सोहागो** – अच्छे भाग्य।

अर्थः गुरू के द्वारा जिस जीव स्त्री के माथे का लेख उघाड़ा गया उस के अनुसार जब प्रभु पति ने उस को अपने चरणों से जोड़ा, उस की हृदय की सेज सुंदर हो गई। हे नानक! उस सौभाग्यवती जीव स्त्री को प्रीतम प्रभु दिन रात दर्शन देता है। उसके पास रहता है। प्रभु पति उस का सदा के लिए कायम रहने वाला सुहाग बन जाता है।।१७।।१।।

भावः जो मनुष्य परमात्मा के स्तुति गायन को अपने जीवन का आश्रय बना लेता है, उस को किसी संगरांद, मसिया आदि की खास पवित्रता का भ्रम-भुलेखा नहीं रहता है। वह मनुष्य किसी काम को शुरू करने के लिए कोई खास मुहूर्त नहीं ढूंढता। उसको विश्वास होता है कि परमात्मा का आश्रय लेने से सभी काम रास हो जाते हैं।

❖

(4) बारहमाहा

माझ महला ५, घरु ४

किरत करम के वीछुड़े, करि किरपा मेलहु राम।।
चारि कुंट दहदिस भ्रमे, थकि आए प्रभ की साम।।

पद अर्थः **किरति**–कृति, कर्म, प्रस्तुति के अनुसार। **राम**– हे प्रभु! **कुंट**– कूट, पासा। **दहदिस** – बता पाए(उत्तर, पश्चिम, दक्षिण, पूर्व - चारों कोने, ऊपर की दिशा व नीचे की दिशा)। **साम**– शरण।

अर्थः हे प्रभु! हम अपने कर्मों के फल के अनुसार(तेरे से) बिछुड़े हुए हैं(तुझे बिसार कर बैठे हैं, कृपा करके हमें अपने साथ मिलाओ)। माया केमोह में फंस कर चारों ओर हर दिशा में सुखों की खातिर भटकते रहे हैं। अब हे प्रभु! थक कर तेरी शरण आए हैं।

धेनु दुधै ते बाहरी, कित्तै न आवै काम।।
जल बिनु साख कुमलावली, उपजहि नाही दाम।।

पद अर्थः **धेनु**– गाय। **बाहरी**– के बिना। **साख**– खेती, फसल। **दाम**– पैसे, धन।

अर्थः जैसे दूध के बिना गाय किसी काम की नहीं होती, वैसे ही पानी के बिना खेती सूख जाती है। फसल पकती नहीं है और उस खेती में से ध न की कमाई नहीं हो सकती। इसी प्रकार प्रभु के नाम के बिना हमारा जीवन व्यर्थ चला जाता है।

हरि नाह न मिलीऐ साजनै, कत पाईऐ बिसराम।।
जितु घरि हरि कंतु ना प्रगटई, भठि नगर से ग्राम।।

पद अर्थः **नाह**–नाथ, खसम। **कत**– कैसे? कहां ? **बिसराम**–सुख। **जितु** – जिस में। **जितु घटि** – जिस(हृदय) रूपी घर में। **भठि**– तपती

हुई भट्ठी। से – जैसे। **ग्राम–** गांव।

अर्थः साजन, प्रभु पति को मिले बिना किसी भी अन्य स्थान पर सुख प्राप्त नहीं होता। सुख मिले भी कैसे ? जिस हृदय रूपी घर में पति प्रभु आ कर न बसे, उस की मानिंद तो, बसे हुए गांव व शहर, तपती हुई भट्ठी के समान होते हैं।

स्रब सीगार तंबोल रस, सणु देही सभ खाम।।
प्रभ सुआमी कंत विहूणीआ, मीत सजण सभ जाम।।

पद अर्थः स्रब– सारे। **तंबोल–** पान के बीड़े। **सणु**–सहित। **देही**–शरीर। **खाम–** कच्चे, नाशवान, व्यर्थ। **सभि–** सारे। **जाम–** यम, जान के दुश्मन।

अर्थः स्त्री को पति के बिना शरीर के सारे श्रृंगार, पान के बीड़े व अन्य रस-कस अपने शरीर सहित व्यर्थ ही दिखलाई देते हैं। इसी प्रकार मालिक प्रभु की याद के बिना सारे सज्जन मित्र, जान के शत्रु ही दीखते हैं।

नानक की बेनंतीआ, करि किरपा दीजै नामु।।
हरि मेलहु सुआमी संगि प्रभ, जिस का निहचल धाम।।१।।

पद अर्थः संगि– (अपने) साथ। **धाम–** टिकाना।

अर्थः तभी तो नानक की विनती है कि हे प्रभु! कृपा करके अपने नाम की निधि प्रदान करो। हे हरी! अपने चरणों में मुझे जोड़े रखो अन्य सारे आश्रय नाशवान हैं), एक तेरा घर सदा अटल रहने वाला है।।१।।

भावः किये गए कर्मो के संस्कारों के प्रभाव में मनुष्य परमात्मा की याद को भुला देता है। कामादिक विकारों की तपिश से उस का हृदय जलती हुई भट्ठी के समान बना रहता है। इस प्रकार मनुष्य अपनी सारी आयु व्यर्थ गंवा लेता है।

चेति गोविंदु अराधीऐ, होवै अनंदु घणा।।
संत जना मिलि पाईऐ, रसना नामु भणा।।

पद अर्थः चेति – चैत्र के महीने में। **घणा–** सघन, गाढ़ा।

मिलि– मिल कर। **रसना–** जीभ। **भणा–** उच्चारण।

अर्थः चैत्र के महीने में बसंत ऋतु आती है। हर दिशा में खिली फुलवाड़ी मन को आनंदित कर देती है। यदि परमात्मा का सुमिरन करें तो सुमिरन की कृपा से अनंत आत्मिक आनंद प्राप्त हो सकता है। पर जीभ से प्रभु के नाम का जाप करने की निधि, गुरमुख-जनों को मिल कर ही प्राप्त होती है।

जिनि पाइआ प्रभु आपणा, आए तिसहि गणा।।
इकु खिनु तिसु बिनु जीवणा, बिरथा जनमु जणा।।

पद अर्थः जिनि– जिस मनुष्य ने। **तिसहि–** उसी को। **आए गणा–** आया समझो। **जणा–** जानो।

अर्थः उसी व्यक्ति को संसार में पैदा हुआ जानो, उसी का जन्म सफल समझो जिस ने सुमिरन की सहायता के द्वारा अपने परमात्मा के संग मिलाप कर लिया, क्योंकि परमात्मा की याद के बिना एक क्षण-मात्र समय गुजारे भी जीवन व्यर्थ बीता जानो।

जलि थलि महीअलि पूरिआ, रविआ विचि वणा।।
सो प्रभु चिति न आवई कितड़ा दुखु गणा।।

पद अर्थः महीअलि – मही तलि, धरती के तल पर, आकाश में, ब्रहमांड में।

अर्थः जो प्रभु जल में, थल में, आकाश में, जंगलों में, हर स्थान पर व्यापक है, यदि ऐसा प्रभु किसी मनुष्य के हृदय में न बसे, तो उस मनुष्य के मानसिक दुख का वर्णन नहीं किया जा सकता।

जिनी राविआ सो प्रभू, तिंना भागु मणा।।
हरि दरसन कंउ मनु लोचदा, नानक पिआस मना।।
चेति मिलाए सो प्रभू, तिस कै पाइ लगा।।२।।

पद अर्थः मणा– कई मन, बहुतायात में। **कंऊ–** को। **मना–** मनि, मन में। **तिस कै पाइ –** उस मनुष्य के पैरों में। **लगा–** पड़ूं, पड़ता

हूं (पाएं लागूं)।

अर्थः पर जिन लोगों ने उस सर्व व्यापक प्रभु को अपने हृदय में बसाया है, उन के भाग्य जाग उठते हैं।

नानक का मन भी हरी के दीदार की चाह में उतावला है। नानक के मन में हरिदर्शन की प्यास है। जो मनुष्य मुझे हरि का मिलाप करवा दे, मैं उस के चरण छू लूंगा।।२।।

भावः परमात्मा के नाम की कृपा द्वारा मनुष्य के अंदर आत्मिक आनंद बना रहता है। वही मनुष्य जीवित जानो जो परमात्मा के नाम का सुमिरन करता है। पर नाम की निधि साध संगत में से प्राप्त होती है।

वैसाखि धीरनि किउ वाढीआ, जिना प्रेम बिछोहु।।

हरि साजनु पुरखु विसारि कै, लगी माइआ धोहु।।

पद अर्थः वैसाखि– बैसाख के महीने में। **किउ धीरनि–कैसे** धैर्य करें ? **वाढीआ–** पति से बिछुड़ी हुई। **बिछोहु –** बिछोड़ा। **प्रेम बिछोहु –** प्रेम का अभाव। **माइआ धोहु –** मन मोहिनी माया।

अर्थः बैसाखी वाला दिन प्रत्येक स्त्री मर्द के लिए रीझ वाला होता है। पर बैसाख में उन स्त्रियों का दिल कैसे टिके जो पति से बिछुड़ी हुई हैं। जिन के अंदर प्यार को प्रकट करने का अभाव है। इसी प्रकार उस जीव को धैर्य कैसे मिले जिस को सज्जन प्रभु भूल कर मनमोहिनी माया चिपटी हुई है।

पुत्र कलत्र न संगि धना, हरि अविनासी ओहु।।

पलचि पलचि सगली मुई, झूठे धंधै मोहु।।

पद अर्थः कलत्र– स्त्री। **पलचि–** फंस कर, उलझ कर। **सगली–** सारी(सृष्टि)। **धंधै मोहु –** धंधे का मोह।

अर्थः न पुत्र, न स्त्री, न धन, कोई भी अंत तक, निर्णय की घड़ी के समय तक साथ नहीं निभाता है। एक अविनाशी परमात्मा ही असली साथी है। नाशवान धंधे का मोह सारी दुनियां को ही व्याप्त हो रहा है। माया के मोह

में बार-बार फंस कर सारी दुनियां ही आत्मिक मौत मर रही है।

इकसु हरि के नामु बिनु, अगै लईअहि खोहि।।

दयु विसारि विगुचणा, प्रभ बिनु अवरु न कोइ।।

पद अर्थः खोहि लईअहि – छीने जाते हैं। **अगै–** पहले ही। **दयु–** प्यारा प्रभु। **विगुचणा–** ख्वार होना।

अर्थः एकीश्वर के नाम सुमिरन के बिना और जितने भी कर्म यहां किए जाते हैं, वे सारे मरने से पूर्व ही छीन लिए जाते हैं। भाव, वे ऊंचे आत्मिक जीवन का अंग नहीं बन सकते।

प्यार-स्वरूप प्रभु को भूल कर ख्वारी ही होती है। परमात्मा के बिना जीवन का और कोई साथी ही नहीं होता।

प्रीतम चरणी जो लगे, तिन की निरमल सोइ।।

नानक की प्रभ बेनती, प्रभ मिलहु परापति होइ।।

वैसाखु सुहावा ता लगै, जा संतु भेटै हरि सोइ।।३।।

पद अर्थः सोइ– शोभा। **परापति होइ**- (पर्याप्ति- to one's heart's content) जिस के साथ (मेरे) दिल की रीझ पूरी हो जाए। **संतु हरि**– हरी-संत। **भेटै**- मिल जाए।

अर्थः जो लोग प्रभु प्रीतम के पांव लगते हैं, उन की लोक परलोक में भली शोभा होती है।

हे प्रभु! तेरे दर पर मेरी विनती है कि मुझे तेरा दिल-भर कर मिलाप नसीब हो।(ऋतु परिवर्तन से चारों ओर वनस्पति भले ही सुहावनी हो जाए, पर इस जान को बैसाख का महीना तब ही मोहक लग सकता है यदि हरि-संत प्रभु मिल जाए।।३।।

भावः परमात्मा के नाम सुमिरन के बिना और जितने भी कर्म यहां पर किए जाते हैं वे उच्च आत्मिक जीवन का अंग नहीं बन सकते। प्रभु की याद से विरक्त मनुष्य दुखी जीवन व्यतीत करता है। चारों दिशाओं की सुहावनी प्रकृति भी उस को बल्कि, काट-काट कर खाती है।

हरि जेठि जुड़ंदा लोड़ीऐ, जिसु अगै सभि निवंनि।।
हरि सजण दावणि लगिआ, किसै न देई बंनि।।

पद अर्थः **जेठि**–ज्येष्ठ के महीने में। **हरि जुड़ंदा लोड़ीऐ**–प्रभु चरणों में जुड़ना चाहिए। **सभि**– सारे जीव। **निवंनि**– झुकते हैं। **सजण दावणि**– सज्जन के दामन में, पल्लू में। **किसै........बंनि**– किसी को बांधने नहीं देता, किसी यम आदि को आज्ञा नहीं देता कि उस जीव को बांध कर आगे लगा ले।

अर्थः जिस हरी के सामने सारे जीव सिर झुकाते हैं, ज्येष्ठ के महीने में उस के चरणों में जुड़ना चाहिए। यदि हरी-सज्जन के संग जुड़े रहें तो वह किसी यम आदि को आज्ञा नहीं देता कि बांध कर आगे लगा ले। भाव, प्रभु के संग जुड़ते समय यमों का भय नहीं रह जाता है।

माणक मोती नामु प्रभ, उन लगे नाही संनि।।
रंग सभे नाराइणे, जेते मनि भावंनि।।

पद अर्थः **रंग जेते**– जितने भी रंग हैं। **नाराइणै** – परमात्मा के। **भावंनि**– प्यारे लगते हैं।

अर्थः लोग हीरे-मोती, लाल, माणिक आदि कीमती धन एकत्र करने के लिए दौड़-धूप करते हैं पर उस धन के चोरी हो जाने का भय भी बना रहता है। परमात्मा के नाम के हीरे, मोती आदि ऐसा कीमती धन है कि वह चुराया नहीं जा सकता। परमात्मा के जितने भी कौतुक हो रहे हैं, नाम धन की कृपा से वे सारे मन में प्यारे लगते हैं।

जो हरि लोड़े सो करे, सोई जीअ करंनि।।
जो प्रभि कीते आपणे, सेई कहीअहि धंनि।।

पद अर्थः **करंनि**– करते हैं । **प्रभि**– प्रभु ने । **कहीअहि**– कहे जाते हैं ।

अर्थः यह भी समझ आ जाती है कि प्रभु स्वयं, व उस के पैदा किए जीव वही कुछ करते हैं जो उस प्रभु को भाताा है।

जिन लोगों को प्रभु ने अपने स्तुति-गायन की निधि प्रदान करके अपना बना लिया है, उनको ही संसार में शाबाश मिलती है।

आपण लीआ जे मिलै, विछुड़ि किउ रोवंनि।।
साधू संगु परापते, नानक रंग माणंनि।।
हरि जेठु रंगीला तिसु धणी, जिस के भागु मथंनि।।४।।

पद अर्थः **विछुड़ि**– प्रभु के बिछोड़े ने। **साधु संगु** – गुरू का संग। **तिसु**– उस मनुष्य को। **जिस कै मथंनि** – जिस के माथे पर।

अर्थः पर परमात्मा जीवों के अपने प्रयास से नहीं मिल पाता। यदि जीवों के अपने प्रयास से वह मिल पाता तो जीव उस से बिछुड़ कर दुखी क्यों हों? हे नानक! प्रभु के मिलाप के आनंद का भोग वही लोग करते हैं जिन को गुरू की संगत प्राप्त हो जाती है। जिस मनुष्य के माथे पर भाग्य जागे, उस को ज्येष्ठ का महीना सुहावना लगता है। उस को प्रभु मालिक मिल जाता है।।४।।

भावः परमात्मा का नाम-धन सदा मनुष्य के साथ निभता है। नाम सुमिरन वाला मनुष्य लोक-परलोक में शोभा अर्जित करता है। नाम की निधि परमात्मा की कृपा से गुरू की शरण में आने से ही मिलती है।

आसाढ़ तपंदा तिसु लगै, हरि नाहु न जिंना पासि।।
जग जीवन पुरखु तिआगि कै, माणस संदी आस।।

पद अर्थः **नाहु**– खसम। **जग जीवन पुरखु**– जगत का सहारा प्रभु। **संदी** – की।

अर्थः आषाढ़ का महीना उन जीवों को तपता हुआ प्रतीत होता है, ऐसे व्यक्ति आषाढ़ के महीने की तरह तपते व कुढ़ते रहते हैं, जिन के हृदय में प्रभु पति का निवास नहीं होता, जो संसार के पालक, परमात्मा का आश्रय छोड़ कर मानस पर आस लगाए रखते हैं।

दुयै भाइ विगुचीऐ, गलि पईसु जम की फास।।
जेहा बीजै सो लुणै, मथै जो लिखिआसु।।

पद अर्थः दुयै भाइ–(प्रभु के बिना किसी) दूसरे के प्यार में। **विगुचीऐ**– ख्वार होते हैं। **गलि** – गले में। **लुणै**– काटता है। **मथै**– माथे पर।

अर्थः प्रभु के बिना किसी अन्य के आश्रय रहने से ख्वार ही होना पड़ता है। जो भी कोई और सहारा देखता है उस के गले में यम की फांसी पड़ती है। उस का जीवन सदा सहम में व्यतीत होता है। किये गए कर्मों के अनुसार जो लेख उस के माथे पर लिखा जाता है, वैसा फल वह प्राप्त करता है।

रैणि विहाणी पछुताणी, उठिलिी गई नरासच।।
जिन कौ साधू भेटीऐ, सो दरगह होइ खलासु।।

पद अर्थः रैणि– रात, आयु। **कौ**- को। **भेटीऐ**– मिलता है। साधू - गुरू। **खलासु** - आदरयोग्य, सुरखुरू ।

अर्थः जगजीवन पुरुष को भूलने वाली जीव स्त्री का सारा जीवन पछतावों में ही व्यतीत् होता है। वह इस संसार से, टूटे हुए दिल से ही चल पड़ती है।

जिन व्यक्तियों को गुरू मिल जाता है, वे परमात्मा की हजूरी में सम्मान पाते हैं।

करि किरपा प्रभ आपणी, तेरे दरसन होइ पिआस।।
प्रभ तुधु बिनु दूजा को नही, नानक की अरदासि।।
आसाड़ सुहंदा तिसु लगै, जिसु मनि हरि चरण निवास।।५।।

पद अर्थः प्रभ- हे प्रभु! **होइ**– बनी रहे। **जिसु मनि**– जिस के मन में। **निरास** – टूटे हुए दिल वाला।

अर्थः हे प्रभु ! तेरे सामने नानक की विनती है। अपनी कृपा करो। मेरे मन में तेरे दर्शनों की लालसा बनी रहे, क्योंकि हे प्रभु! तेरे बिना मेरा कोई और आसरा नहीं है।

जिस मनुष्य के मन में प्रभु के चरणों का निवास बना रहे, उस को तपता हुआ आषाढ़ का महीना भी सुहावना प्रतीत होता है। उस को दुनियां के

दुख क्लेश भी दुखी नहीं कर सकते।

भावः जो मनुष्य परमात्मा की याद को भुला कर, परमात्मा का आश्रय भूल कर, प्रभु से इतर लोगों के आश्रय ढूंढता रहता है वह सारी आयु ख्वार होता रहता है। उस की दुनियां वाली आशाएं भी पूरी नहीं होती हैं। जिस के हृदय में सदा परमात्मा की याद बनी रहती है, उसका सारा जीवन सुहावना व्यतीत होता है।

सावणि सरसी कामणी, चरन कमल सिउ पिआरु।।
मनु तनु रता सच रंगि, इको नामु अधारु।।

पद अर्थः सावणि– सावन के महीने में ।**सरसी–**स–रसी, रस वाली, हरियावली । **कामणी–** जीव–स्त्री । **सच रंगि–** सच्चे के प्यार में । **अधारु–** आसरा, आश्रय ।

पद अर्थः जैसे सावन में वर्षा द्वारा वनस्पति हरी भरी हो जाती है वैसे ही वह जीव स्त्री उल्लासमय हो जाती है। भाव, उस जीव का हृदय खिल उठता है जिस का प्यार, प्रभु के सुंदर चरणों के संग जुड़ जाता है। उस का मन, उस का तन परमात्मा के प्यार में रम जाता है। परमात्मा का नाम ही उस के जीवन का आश्रय बन जाता है।

बिखिआ रंग कूड़ाइआ, दिसनि सभे छारु।।
हरि अंमृत बूंद सुहावणी, मिलि साधू पीवणहारु।।

पद अर्थः बिखिआ रंग – माया के रंग। **दिसनि–** दिखलाई देते हैं। **छारु–** राख। **साधू–** गुरू। **पीवणहार–** पीने लायक।

अर्थः माया के सारे नाशवान कौतुक उस को राख की तरह व्यर्थ दिखलाई देते हैं। श्रावण में जैसे वर्षा की बूंद सुंदर लगती है, वैसे ही प्रभु के चरणों के प्यार वाले व्यक्ति को हरि के नाम की, आत्मिक जीवन देने वाली बूंद प्यारी लगती है। गुरू को मिल कर वह मनुष्य उस बूंद को पीने लायक हो जाता है। प्रभु की महानता के गुण–गायन द्वारा, उसके उपदेशों पर चलने से छोटी–छोटी बातें भी उसको मीठी लगने लगती हैं। गुरू को मिल कर वह उसके उपदेश को बहुत शौक से सुनता है।

वणु तिणु प्रभ संगि मउलिआ, संम्रथ पुरखु अपारु।।
हरि मिलणै नो मनु लोचदा, करमि मिलावणहारु।।

पद अर्थः **तिणु**–घास। **मउलिआ** – हरा भरा। **करमि** – कृपा द्वारा।

अर्थः जिस प्रभु के मेल से सारा संसार, वनस्पति आदि हरी भरी हुई है, जो प्रभु सब कुछ करने में समर्थ है, व्यापक है और अनंत है, उस को मिलने के लिए मेरे मन में आकांक्षा है। पर वह प्रभु स्वयं ही अपनी कृपा द्वारा मिलने में समर्थ है।

जिनी सखीए प्रभु पाइआ, हंउ तिन कै सद बलिहार।।
नानक हरि जी मइआ करि, सबदि सवारणहारु।।
सावण तिना सुहागणी, जिन राम नामु उरि हारु।।६।।

पद अर्थः **मइआ**– दया। **सबदि** – शब्द(उपदेश)के द्वारा। **उरि**– हृदय में।

अर्थः मैं उन गुरमुख सखियों से बलि–बलि जाती हूं, जिन्होंने प्रभु के संग मिलाप कर लिया है।

हे नानक! विनती कर और कहो - हे प्रभु! मेरे पर कृपा करो। आप स्वयं ही गुरू के शबद यानी गुरू के उपदेश द्वारा मेरा जीवन संवारने में समर्थ हो।

सावन का मास उन भाग्यवान जीव–स्त्रियों के लिए उल्लास व शीतलता लाने वाला है जिन्होंने अपने हृदय रूपी गले में परमात्मा का नाम रूपी हार पहना हुआ है।।६।।

भावः जिस मनुष्य के अंदर परमात्मा का प्यार टिका रहता है, जो मनुष्य परमात्मा के नाम को अपने जीवन का आधार बनाए रखता है, वह दुनियां के रंग–तमाशों को इसके मुकाबले पर ओछा समझता है। जिस मनुष्य पर परमात्मा स्वयं कृपा करता है, उस को गुरू की शरण में रख कर यह निधि प्रदान करता है।

भादुइ भरमि भुलाणीआ, दूजै लगा हेतु।।
लख सीगार बणाइआ, कारजि नाही केतु।।

पद अर्थः भादुइ - भाद्रव के महीने में। भरमि - भटकन में। भुलाणीआं - कुमार्ग पड़ जाती है। हेतु- हितु, प्यार। केतु कारजि - किसी काम में।

अर्थः जैसे कि भाद्रव के त्राटक व हुम्मस(Humidity) के मौसम में मनुष्य बहुत घबरा जाता है, वैसे ही जिस जीव स्त्री का प्यार प्रभु पति के बिना किसी और के संग पनपता है, वह भ्रमित हो कर जीवन के सही रास्ते से भटक जाती है। वह भले ही लाखों हार-श्रृंगार करे, वे उसके किसी काम नहीं आते हैं।

जितु दिनि देह बिनससी, तितु वेलै कहसनि प्रेतु।।
पकड़ि चलाइनि दूत जम, किसै न देनी भेतु।।

पद अर्थः जितु-जिस में। दिनि- दिन में। देह- शरीर। कहसनि- कहेंगे। बिनससी- नाश हो जाएगी। प्रेतु - गुजर चुका, अपवित्र। पकड़ि- पकड़ कर। न देनी- न दें, नहीं देते।

अर्थः जिस दिन मनुष्य के शरीर का नाश होगा, जब मनुष्य मर जाएगा, उस समय सारे नाती-संबंधी कहेंगे कि यह अब गुज़र गया है।(लोथ अपवत्रि पड़ी है, इस को जल्द ही बाहर ले चलो)। यमदूत जान को पकड़ कर आगे लगा लेते हैं। किसी को यह भेद नहीं बताते कि कहां ले चले हैं।
छडि खड़ोते खिनै माहि, जिन सिउ लगा हेतु।।
हथ मरोड़ै तनु कपे, सिआहहु होआ सेतु।।

पद अर्थः सिआहहु-काले (रंग) से । सेतु- सफेद । कपे- कटता है । लुणै- काटता है । खेतु- क्यारी ।
अर्थः जिन संबंधियों के साथ सारी आयु भर बहुत स्नेह व प्यार बना रहता है वे पल में ही साथ छोड़ जाते हैं।

मौत आई देख कर मनुष्य बहुत पछताता है। उसका शरीर परेशान होता

है। वह काले से सफेद होने लगता है। घबराहट से एक रंग आता है, एक रंग जाता है।

जेहा बीजै सो लुणै, करमा संदड़ा खेतु।।
नानक प्रभ सरणागती, चरण बोहिथ प्रभ देतु।।
से भादुइ नरकि न पाईअहि, गुरु रखण वाला हेतु।।७।।

पद अर्थः बोहिथ– जहाज़। **न पाईअहि** – नहीं पाए जाते। **हेतु** – हितैशी, प्यार करने वाला। **संदड़ा–** का।

अर्थः यह शरीर मनुष्य के किये कर्मो का खेत है। जो कुछ मनुष्य इस में बीजता है वह उसी की फसल को काटता है। जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल पाता है।

हे नानक! जिनका रक्षक व हितैशी गुरू बनता है, वे नर्क में नहीं पाए जाते। क्योंकि गुरू की कृपा द्वारा वे प्रभु की शरण में आ जाते हैं। गुरू उनको प्रभु के चरण-रूपी जहाज में चढ़ा देता है।।७।।

भावः जैसे क्यारी में जो कुछ बीजेंगे, वही फसल काटेंगे। इसी प्रकार इस शरीर के द्वारा जैसा मनुष्य कर्म करता है वैसे ही संस्कार उस के मन में एकत्र होते जाते हैं। अतः दुनियां के नाशवान पदार्थों के संग डाला हुआ प्यार मनुष्य को आयुपर्यंत गलत रास्ते पर डाले रखता है और इन पदार्थों वाला साथ भी आखिर समाप्त हो जाता है। गुरू की शरण आ कर कमाया हुआ गुरू चरणों का प्यार ही असली साथी है, सुखदाई है।

असुनि प्रेम उमाहड़ा, किउ मिलीऐ हरि जाइ।
मनि तनि पिआस दरसन घणी, कोई आणि मिलावै माइ।।

पद अर्थः असुनि– असु के महीने में। **उमाहड़ा–** उछाल। **जाइ** – जा कर। **किउ**– क्यों, कैसे? किसी न किसी तरह। **मनि–** मन में। **तनि** – शरीर में। **घणी–** बहुत। **आणि–** ला कर। **माइ** – हे मां !

अर्थः हे मां! भाद्रव के घुमस भरे मौसम में त्राटक निकलने के पश्चात असु की मीठी मीठी ऋतु में मेरे अंदर प्रभु पति के प्यार की तरंगें उठ रही

हैं। मन बिहवल है कि किसी न किसी तरह चल कर प्रभु पति को मिला जाए। मेरे मन में, मेरे तन में, प्रभु के दर्शन की बहुत प्यास लगी हुई है। मन करता है कि कोई उस प्रभु पति को लाकर मेरा मिलन करवा दे।

संत सहाई प्रेम के, हउ तिन कै लागा पाइ।।
विणु प्रभ किउ सुखु पाईऐ, दूजी नाही जाइ।।

पद अर्थः हउ– मैं। तिन कै पाइ – उन के चरणों में। जाइ – जगह।

अर्थः जिन बड़े भाग्य वालों ने प्रभु प्यार का एक बार आनंद चख लिया है, उनको माया के स्वाद भूल जाते हैं। माया की ओर से वे भरपेट संतुष्ट हो जाते हैं। अपने अपने स्व वह अहं की भावना को त्याग कर वे सदा प्रार्थना करते रहते हैं कि हे प्रभु! हमें अपने संग जोड़े रखो।

जो हरि कंति मिलाईआ, सि विछुड़ि कतहि ना जाइ।।
प्रभ विणु दूजा को नही, नानक हरि सरणाइ।।
असू सुखी वसंदीआ, जिना मइआ हरि राइ।।८।।

पद अर्थः कंति – पति ने। कतहि – किसी और स्थान पर। मइआ – कृपा।

अर्थः जिस जीव स्त्री को प्रभु पति ने अपने साथ मिला लिया है, वह स्वयं मिलाप में से बिछुड़ कर और किसी स्थान पर नहीं जाती, क्योंकि हे नानक! उस को निश्चय हो जाता है कि स्थाई सुख के लिए प्रभु की शरण के सिवा और कोई स्थान नहीं है। वह सदा प्रभु की शरण पड़ी रहती है।।८।।

भावः परमात्मा की याद के बिना सुख नहीं प्राप्त हो सकता। सुख हर स्थान पर ही प्राप्त नहीं हो जाता। यह निधि गुरू की शरण में आने से प्राप्त होती है। साध संगत में से प्राप्त होती है। गुरू की शरण व साध संगत का मेल परमात्मा की अपनी कृपा द्वारा ही नसीब होता है। सदा उस के दर पर अरदास करते रहना चाहिए – हे परमात्मा! हमें अपने संग जोड़े रखो।

कतिकि करम कमावणे, दोसु न काहू जोगु।।

परमेशर ते भुलिआ, विआपनि सभे रोग।।

पद अर्थः कतिकि- कार्तिक(की ठंडी बहार) में। **काहू जोग-** किसी के जिम्मे, किसी के माथे। **विआपनि्-** जोर डाल लेते हैं।

अर्थः कार्तिक की सुहावनी ऋतु में भी यदि प्रभु पति से बिछुड़े रहे तो यह अपने किये हुए कर्मो का ही परिणाम है । किसी और के माथे पर कोई दोश नहीं लगाया जा सकता । परमेश्वर की याद से बिछुड़ जाने से दुनियां के सारे दुख-क्लेश बलवती हो जाते हैं ।

अर्थः जिन्होंने इस जन्म में परमात्मा की याद की तरफ से मुंह मोड़े रखा है, उनको फिर लंबे बिछोड़े पड़ जाते हैं। जिस माया की मौजों की खातिर, प्रभु को भुला दिया था वह भी एक पल में दुखदाई हो जाती हैं।

विचु न कोई करि सकै, किस थै रोवहि रोज।।
कीता किछू न होवई, लिखिआ धुरि संजोग।।

पद अर्थः विचु-बिचोलापन। **किस थे-** (और) किस के पास? **रोज-** नित्य, हर रोज। **कीता-** अपना किया हुआ कर्म। **धुरि -** प्रभु की हजूरी से।

अर्थः उस दुख की दशा में किसी के पास भी नित्य का रोना रोने का कोई लाभ नहीं होता। क्योंकि दुख तो है बिछुड़ने के कारण और बिछोड़े को दूर करने के लिए कोई बिचौलिया नहीं बन सकता। दुखी जीव की अपनी कोई पेश नहीं जाती है। पूर्व कर्मो के अनुसार परमात्मा द्वारा लिखे लेखों की विधि आ बनती है।

वडभागी मेरा प्रभु मिलै, तां उतरहि सभि बिओग।।
नानक कउ प्रभि राखि लेहि, मेरे साहिब बंदी मोच।।
कतिकि होवै साध संगु, बिनसहि सभे सोच।।९।।

पद अर्थः सभि- सारे। **बिओग -** बिछोड़े के दुख। **कउ-** को **प्रभ-** हे प्रभु! **बंदी मोच-**हे कैद में से छुड़ाने वाले। **बिनसहि -** नाश हो जाते हैं। **सोच -** चिंता।

अर्थः यदि सौभाग्य से प्रभु स्वयं मिल जाए तो बिछोड़े से पैदा हुए सारे दुख मिट जाते हैं।

नानक की तो यही विनती है कि हे माया के बंधनों से छुड़ाने वाले मेरे मालिक प्रभु! नानक को माया के मोह से बचा ले।

कार्तिक की आनंद-दायक ऋतु में जिन को साध संगत मिल जाए, उनकी बिछोड़े वाली सारी चिंता मिट जाती है।।१।।

भावः परमात्मा की याद को त्याग देने से सारे दुख-क्लेश बलवान हो कर घेर लेते हैं। परमात्मा से लंबे समय तक बिछोड़ा हो जाता है। जिन रंग-तमाशों की खातिर परमात्मा की याद को हम भुला देते हैं, वे भी अंततः दुखदाई हो जाते हैं। तब दुखी जीव की अपनी कोई पेश नहीं जाती है। परमात्मा स्वयं कृपा करके जिस मनुष्य को गुरू की संगत में मिलाता है, उस को माया के बंधनों से प्रभु जी छुड़ा लेते है।

मंघिरि माहि सुहंदीआ, हरि पिर संगि बैठड़ीआह।।
तिन की सोभा किआ गणी, जि साहिबि मेलड़ीआह।।
तनु मनु मउलिआ राम सिउ, संगि साध सहेलड़ीआह।।

पद अर्थः मंघिरि– माघ के महीने में। **माहि**– महीने में। **पिर संगि** – पती के संग। **किआ गणी** – मैं क्या बताऊं ? वर्णन नहीं हो सकता। **जि**– जिन को। **साहिबि**– साहिब ने। **राम सिउ**– परमात्मा के संग। **साध सहेलड़ीआह**– के संग, सत संगियों के साथ।

अर्थः मधुमास के शीतल व मधुर महीने में वे जीव-स्त्रियां सुंदर लगती हैं जो हरी-पति के संग बैठी होती हैं। जिन को मालिक प्रभु ने अपने साथ मिला लिया, उनकी शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। सत्संगी सहेलियों की संगत में, प्रभु के साथ मन जोड़ कर उनका शरीर, उनका मन, सदा खिला रहता है, सद उल्लासमय रहता है।

साध जनां ते बाहरी, से रहनि इकेलड़ीआह।।
तिन दुखु न कबहू उतरै, से जम के वसि पढ़ीआह।।

पद अर्थः बाहरी-बिना। ते – से।

अर्थः पर जो जीव स्त्रियां सत्संगियों की संगत से विरक्त रहती हैं, वे अकेली परित्यक्त ही रहती हैं, जैसे जले हुए तिलों के पौधे क्यारी में बिना किसी मालिक के रहते है। अकेली नार को देख कर, कामादिक कई शत्रु आ कर घेर लेते हैं। उसका विकारों से उत्पन्न हुआ दुख, कभी दूर नहीं होता। वह यमों के वश पड़ी रहती है।

जिनी राविआ प्रभु आपणा, से दिसनि नित खड़ीआह।।
रतन जवेहर लाल हरि, कंठि तिना जड़ीआह।।

पद अर्थः दिसनि– दीखती हैं। खड़ीआह–सावधान, सुचेत। कंठि– गले में (भाव हृदय में)।

अर्थः जिन जीव-स्त्रियों ने पति-परमेश्वर का साथ स्वीकार किया है, वे विचारों के आघात से सदा सुचेत दीखती हैं। विकार उन पर चोट नहीं कर पाते, क्योंकि वे परमात्मा के गुणानुवाद रूपी सुरक्षा-चक्र में होती हैं। इन गुणों की सुरक्षा की माला इनके मन में ऐसे पिरोई होती है जैसे हीरे-जवाहरातों व लालों का हार गले में पहना होता है।

नानक बांछै धूड़ि तिन्, प्रभ सरणी दरि पड़ीआह।।
मंघिरि प्रभू आराधणा, बहुड़ि न जनमड़ीआह।।१०।।

पद अर्थः बांछै- मांगता है। दरि – दर पर। बहुड़ि – फिर, दुबारा।

अर्थः नानक उन सत्संगियों के चरणों की धूड़ मांगता है जो प्रभु के दर पर पड़े रहते हैं। नानक उनकी चरण धूड़ि चाहता है, जो प्रभु की शरण में रहते हैं। माघ के महीने में परमात्मा का सुमिरन करने से जीव पुनः जन्म मृत्यु के भंवर में नहीं आता है।।१०।।

भावः जो मनुष्य गुरू की संगत में रह कर, परमात्मा की याद में जुड़ता है, उस का तन-मन सदा खिला रहता है। वह मनुष्य लोक-परलोक में शोभायमान होता है। वह विकारों के आघात से सदा सजग रहता है। पर जो

मनुष्य परमात्मा को भुलाए रखता है, उस की आयु, दुखों में व्यतीत होती है। कामादिक विकार रूपी कई शत्रु उस को सदा घेरे रखते हैं।

पोखि तुखारु न विआपई, कंठि मिलिआ हरि नाहु।।
मनु बेधिआ चरनारबिंद, दरसनि लगड़ा साहु।।

पद अर्थः **पोखि**- पौष के महीने में। **तुखारु** –कोरा स्वभाव। **न विआपई**–हावी नहीं होता, जोर नहीं डालता। **कंठि** – गले में, गले के साथ,(हृदय में)। **नाहु**– नाथ, खसम, पति। **बेधिआ**– बिंध जाता है। **चरनारबिंद** – चरन-अरबिंद, चरन कमल। **दरसनि**- दीदार में। **साहु**- एक एक सांस।

अर्थः पौष के महीने में जिस जीव-स्त्री के गले के साथ(हृदय में) प्रभु-पति लगा हुआ हो उस पर कोरा, (मन की कठोरता, कोरापन) बलवान नहीं हो सकता क्योंकि उस की वृत्ति प्रभु के दीदार की कामना में जुड़ी रहती है। उस का मन प्रभु के सुंदर चरणों बिछा रहता है।

ओट गोविंद गोपाल राइ, सेवा सुआमी लाहु।।
बिखिआ पोहि न सकई, मिलि साधू गुण गाहु।।

पद अर्थः **लाहु**– लाभ। **बिखिआ**– माइआ। **साधू** – गुरू। **गुण गाहु** – गुणों की विचार, गुणों में डुबकी।

अर्थः जिस जीव-स्त्री ने गोबिंद गोपाल का आश्रय लिया है, उस ने प्रभु पति की सेवा का लाभ कमाया है। माया उस पर हावीं नहीं हो सकती। माया उस पर बलवती नहीं हो सकती। गुरू को मिल कर उसने प्रभु के स्तुति-गायन में डुबकी लगाई है।

जह ते उपजी तह मिली, सची प्रीति समाहु।।
करु गहि लीनी पारब्रहमि, बहुड़ि न विछुड़ीआहु।।

पद अर्थः जह ते - जिस प्रभु से। **समाहु**– लिव। **करु** – हाथ। **गहि** – पकड़ कर। **पारब्रहमि** – पारब्रहम ने।

अर्थः जिस परमात्मा से उस रूह ने जन्म लिया है, उस में वह रूह

जुड़ी रहती है। उस की लिव प्रभु की प्रीति में लगी रहती है। पारब्रहम ने उस का हाथ पकड़ कर, उस को अपने चरणों में जोड़ा होता है। वह फिर उस के चरणों से बिछुड़ती नहीं है।

बारि जाउ लरव बेरीआ, हर सजणु अगम अगाहु।।
सरम पई नाराइणै, नानक दरि पईआहु।।
पोथु सोुहंदा सरब सुरव, जिसु बरवसे वेपरवाहु।।११।।

पद अर्थः बारि जाउ– मैं बलिहार जाती हूं। **बेरीआ–** बारी। **अगम–** अपहुंच। **अगाहु –** अगाध, विशाल हृदय वाला । **सरम पई–** लाज रखनी पड़ी। **दरि–** दर पर। **सुोहंदा–** (मूल शब्द *सोहंदा* है, पाठ सुहंदा करना है। स अक्षर के साथ (ो) *छोटे ओ* की मात्रा व (ु) *छोटे उ* की मात्रा दोनों प्रयोग की गई हैं। अथवा मूल पंजाबी में ਸ अक्षर के साथ (ੋ) *होड़ा* व (ੁ) *औंकड़* दोनों मात्राओं अर्थात *ਸੋੁਹੰਦਾ = सुोहंदा* शब्द का प्रयोग किया गया है। अर्थ है, सुंदर लगता है।

अर्थः सज्जन प्रभु बहुत अपरंपार व अपहुंच है। बहुत गहरा है। मैं उससे लाख-लाख बार कुर्बान जाता हूं। हे नानक! वह बहुत दयालु है। उसके दर पर गिरने से, उस प्रभु को जीव का मान-सम्मान रखना ही पड़ता है।

जिस पर वह विशाल हृदय वाला, बेपरवाह प्रभु कृपा करता है, उस को पौष का महीना सुहावना लगता है, उस को सारे ही सुख मिल जाते हैं।।११।।

भावः जिस मनुष्य पर परमात्मा कृपा दृष्टि करता है, वह गुरू की शरण पड़ कर, परमात्मा का स्तुति-गायन करने को अपने जीवन की व्यवहारिक आध्यात्मिक कमाई समझता है। स्तुति-गायन की कृपा से उस के अंदर से स्वार्थ वाला जीवन समाप्त हो जाता है। उस के अंदर हर समय परमात्मा के दर्शन की लालसा बनी रहती है। वह प्रभु शरण आने वाले की लाज रखता है। जिस पर प्रभु की कृपा होती है, उस व्यक्ति पर माया बलवती नहीं हो सकती।

माघि मजनु संगि साधूआ, धूड़ी करि इसनानु।।
हरि का नामु धिआइ सुणि, सभना नो करि दानु।।
जनम करम मलु उतरै, मन ते जाइ गुमानु।।

पद अर्थः माघ- माघ नक्षत्र वाली पूर्णमासी का महीना। माघि- माघ के महीने में (नोटः इस महीने का पहला दिन हिंदू शास्त्रों के अनुसार बहुत पवित्र है। हिंदू सज्जन माघी वाले दिन प्रयाग तीर्थ पर स्नान करना बहुत पुन्य कर्म समझते हैं)। मजनु - डुबकी। दानु- (प्रभु के) नाम का दान। जनमु करम मलु - कई जन्मों के किये कर्मो से पैदा हुई विकारों की मैल। गुमानु - अहंकार।

अर्थः माघ के महीने में, माघी वाले दिवस पर लोग, प्रयाग आदि तीर्थो पर स्नान करना बहुत पुन्य कर्म समझते हैं। पर तूं, हे भाई! गुरमुखों की सु-संगत में बैठ। यही है तीर्थो का स्नान। गुरमुखों की चरणधूड़ि का स्नान कर । विनम्रता से गुरमुखों की सेवा कर । उन गुरमुखों की संगत में, परम-पिता परमात्मा के नाम का जाप कर । परमात्मा का स्तुति-गायन सुन । सभी को इस नाम की निधि बांट। इस प्रकार कई जन्मों के किये कर्मो से पैदा हुई विकारों की मैल, तेरे मन से उतर जाएगी। तेरे मन में से अहंकार दूर हो जाएगा।

कामि करोधि न मोहीऐ, बिनसै लोभु सुआनु।।
सचै मारगि चलदिआ, उसतति करे जहानु।।
अठसठि तीरथ सगल पुंन, जीअ दइआ परवानु।।

पद अर्थः कामि- काम में। करोधि-क्रोध में। मोहीऐ- ठगे जाते हैं। सुआनु-कुत्ता। मारगि-रास्ते पर। उसतति-शोभा। अठसठि- अठाहठ। परवानु - माना हुआ (धार्मिक काम)।

अर्थः सुमिरन की कृपा से काम, वासना व क्रोध के प्रभाव से व्यक्ति बचा रहता है। लोभ रूपी कुत्ते का स्वभाव व प्रभाव समाप्त हो जाता है(लोभ, जिस का प्रभाव दूसरे मनुष्यों को कुत्ते की भांति दर-दर पर भटकाता है)।

सुमिरन की कृपा से इस सत्य मार्ग पर चलने पर संसार भी उस मनुष्य की शोभा करता है। अठाहठ तीर्थों का स्नान, सारे पुन्यकर्म, जीवों पर दया करना, आदि जो धार्मिक कर्म व मान्यताएं निश्चित की गई हैं - यह सब कुछ सुमिरन के अंतर्गत ही आ जाते हैं।

जिस नो देवै दइआ करि, सोई पुरखु सुजानु।।

पद अर्थः करि- कर के। **सुजानु -** बुद्धिमान।

अर्थः परमात्मा अपनी कृपा द्वारा जिस मनुष्य को सुमिरन की निधि प्रदान करता है, वह मनुष्य जीवन के सही मार्ग की पहचान करने वाला बुद्धिमान हो जाता है।

जिना मिलिआ प्रभु आपणा, नानक तिन कुरबानु।।

माघि सुचे से कांढीअहि, जिन पूरा गुरु मिहरवानु।।१२।।

पद अर्थः काढीअहि- कहे जाते हैं।

हे नानक! कहो- जिन को प्यारा प्रभु मिल गया है, मैं उन से बलि-बलि जाता हूं। माघ के महीने में केवल वही जीव सच्चे व पवित्र माने जाते हैं, जिन पर पूरा सतगुरू दयावान होता है और जिन को वह प्रभु सुमिरन की निधि प्रदान करता है।।१२।।

भावः जो मनुष्य गुरू की संगत में टिक कर, परमात्मा का स्तुति-गायन करता है, उस का जीवन पवित्र हो जाता है। यह समझो कि उसने अठाहठ तीर्थों का स्नान कर लिया है। वह काम, क्रोध, लोभ आदि किसी भी विकार के प्रभाव में नहीं आता है। जीवन के सारे रास्ते पार कर के वह संसार में शोभा कमा लेता है।

फलगुणि अनंद उपारजना, हरि सजण प्रगटे आइ।।

संत सहाई राम के, करि किरपा दीआ मिलाइ।।

पद अर्थः फलगुणि - फाल्गुन के महीने में। **उपारजना -** उपज, प्रकाश। राम कै **सहाई-** प्रभु मिलन में सहायता करने वाले।

अर्थः सर्दियों की करड़ी सर्दी के पश्चात बहार आने पर, फाल्गुन के महीने में लोग होलियों के रंग-तमाशों की खुशियां मनाते हैं। पर फाल्गुन में उन जीव-स्त्रियों के अंदर आत्मिक आनंद पैदा होता है जिन के हृदय में सज्जन हरि प्रत्यक्ष हो कर आ बसता है। परमात्मा के संग मिलने में सहायता करने वाले संत-जन, अपनी कृपा द्वारा उनको प्रभु से गांठ देते हैं।

सेज सुहावी, सरब सुख, हुणि दुखा नाही जाइ।।
इछ पुंनी वडभागणी, वरु पाइआ हरि राइ।।

पद अर्थः गावहि - गाती हैं। मंगलु- खुशी का गीत, आत्मिक आनंद पैदा करने वाला गीत, स्तुति गायन की बाणी। अलाइ - उच्चारित करके, आलाप करके। दिसवी - दिखाई देती है। लवै - समीप। लवै लाउणे - नजदीक, समीप, आस-पास। लवै न लाइ - बराबर का नहीं।

अर्थः वे सतसंगी सखियों से मिलकर, गोबिंद के स्तुति-गायन के गीत अलाप कर, आत्मिक आनंद पैदा करने वाली गुरबाणी का गायन करती हैं। परमात्मा जैसा कोई और, उस की बराबरी कर पाने वाला कोई दूसरा, उनको कहीं दिखलाई नहीं देता है।

हलतु पलतु सवारिओनु, निहचल दितीअनु जाइ।।
संसार सागर ते रखिअनु, बहुड़ि न जनमै धाइ।।

पद अर्थः हलतु-(अत्र) इहलोक। पलतु -(तत्र) परलोक। सवारिओनु- उस(प्रभु) ने संवार दिया। दितीअनु- उस (प्रभु) ने दी। ज़ाइ-भटकन।

अर्थः उस परमात्मा ने उन सतसंगियों का लोक-परलोक संवार दिया है। उन को अपने चरणों में विलीन होने वाला ऐसा स्थान प्रदान कियां है जहां पर कोई कभी डोलता नहीं। प्रभु ने अपने हाथ का सहारा देकर, संसार सागर से बचा लिया है। फिर वे जन्म-जन्मांतरों के भंवर में नहीं आते हैं।

जिहवा एक, अनेक गुण, तरे नानक चरणी पाइ।।
फलगुणि नित सलाहीऐ, जिस नो तिलु न तमाइ।।१३।।

पद अर्थः पाइ–पड़ कर। तिलु – जरा भी। **तमाइ** – तमा, लालच।

अर्थः हे नानक! (कहो) हमारी एक जिव्हा है। प्रभु के अनेकों ही गुण हैं। हम उनका वर्णन करने के योग्य नहीं है। पर जो जीव उस की शरण आ जाते हैं, उनके आश्रय की कामना करते हैं, वे संसार समुद्र से पार हो जाते हैं।

फाल्गुन के महीने में, होलियों आदि की क्रीड़ा में से आनंद पाने के स्थान पर वे सदा उस परमपिता परमात्मा का स्तुति गायन करना चाहिए, जिस को अपना माम–सम्मान करवाने का रत्ती भर भी लालच नहीं है। ऐसा करने में हमारा ही कल्याण है।।१३।।

भावः साध संगत में टिक कर परमात्मा का स्तुति–गायन करने से मनुष्य का जीवन इतना उच्च व बलवान हो जाता है कि परमात्मा से उस की दूरी मिट जाती है। उस के अंदर हर समय आनंद बना रहता है। दुख क्लेश उस पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकते। उस का इहलोक व परलोक – दोनों ही संवर जाते हैं। संसार समुद्र की विकारों की लहरों में से वह बड़ी सरलता से पार निकल जाता है।

जिनि जिनि नामु धिआइआ, तिन के काज सरे।।
हरि गुरु पूरा आराधिआ, दरगह सचि खरे।।

पद अर्थः **जिनि**–जिस मनुष्य ने। **सरे** –परवान चढ़ जाते हैं, स्वीकार्य हो जात्ते हैं । **खरे** – मुक्त। **दरगह सचि**– सदा अटल रहने वाले प्रभु की हजूरी में।

अर्थः प्रभु के चरण ही सारे सुखों का खजाना है। जो जीव गुरू की शरण लगते हैं वे कठिन संसार समुद्र में से सही सलामत पार निकल जाते हैं। उनको प्रभु का प्यार, प्रभु की भक्ति प्राप्त होती है। माया की तृष्णा की ज्वाला में वे नहीं जलते हैं।

कूड़ गए, दुबिधा नसी, पूरन सचि भरे।।
पारब्रहमु प्रभु सेवदे, मन अंदरि एकु धरे।।

पद अर्थः कूड़– व्यर्थ के झूठे लालच। **दुबिधा**– मन की भटकन,

दुविधा। सचि- सच्चे प्रभु में। भरे- टिके रहते हैं। धरे- धर कर।

अर्थः उनके व्यर्थ झूठे लालच समाप्त हो जाते हैं। उन के मन की भटकन दूर हो जाती है। वे पूर्ण तौर पर अटल हरी में टिके रहते हैं। वे अपने मन में एक परम ज्योति परमात्मा को बसा कर सदा उस का सुमिरन करते हैं।

माह दिवस मूरत भले, जिन कउ नदरि करे।।
नानकु मंगै दरस दानु, किरपा करहु हरे।।१४।।

पद अर्थ माह -महीने। **दिवस**- दिन। **मूरत** - मुहूर्त। **जिन कउ**- जिन पर। **हरे** - हे हरी।

अर्थः जिन पर प्रभु कृपा की दृष्टि करता है, जिन को प्रभु अपने नाम धन उपदेश की निधि प्रदान करता है, उनके लिए सारे ही महीने, सारे ही दिन, सारे ही मुहूर्त शुभ लक्षण के होते हैं। संगरांद आदि की पवित्रता का भ्रम भुलेखा उन को नहीं होता है। हे प्रभु! कृपा करो। मैं नानक! तेरे दर पर तेरे दीदार की निधि की याचना करता हूं।

भावः जो भी मनुष्य परमात्मा के नाम का जाप करता है, उसके उपदेशों पर चलता है, उस के दुनिआंदारी के सभी काम संपूर्ण हो जाते हैं। वह परमात्मा के सम्मुख भी मुक्त हो जाता है। उस मनुष्य के लिए सारे महीने ही अच्छे भाग्य वाले होते हैं, सारे ही दिन पवित्र होते हैं। उसके लिए संगरांद आदि की विशेष पवित्रता का भुलेखा नहीं रहता। कोई काम करते समय उसको कोई खास मुहूर्त बांचने की जरूरत नहीं रह जाती है। वह मनुष्य हर समय, हर काम करते समय परमात्मा के दर पर ही अरदास करता है।

नोटः सारा ***बारहमाहा*** लिख कर, अंत में गुरू अर्जुन देव जी, गुरू नानक देव जी की भांति यह चेतावनी याद करवाते हैं कि जो मनुष्य परमात्मा का आश्रय लेता है, उस के लिए सारे दिन एक समान हैं। संगरांद, मसिया आदि वाले दिन कोई विशेष पवित्रता का मानदंड नहीं रखते हैं।

○

सिख मिशनरी कालेज (रजि.) के उद्देश्य

1. श्री गुरु ग्रंथ साहिब की गुरमत विचारधारा को दृढ़ करवाना तथा शब्द गुरु के साथ जोड़ना।
2. सिख नौजवानों को सिख पंथ का अद्वितीय इतिहास दृढ़ करवा कर पतित होने तथा नशों के घातक रोग से बचाना।
3. अच्छे पढ़े लिखे तथा प्रशिक्षित निश्काम प्रचारक तैयार करने हेतु प्रत्येक शहर में सिख मिशनरी कालेज की ओर से द्वि-वर्षीय सिख मिशनरी कोर्स करवाने के लिये निःशुल्क कक्षाओं का प्रबन्ध करना।
4. प्रत्येक परिवार में गुरमत विचारधारा दृढ़ करवाने हेतु कालेज द्वारा प्रकाशित पंजाबी तथा हिन्दी भाषाओं में निकलने वाली सिख फुलवाड़ी पत्रिका हर परिवार में पहुँचाना तथा द्वि-वर्षीय सिख मिशनरी कोर्स पत्राचार पाठ्यक्रम, घर बैठे डाक द्वारा करवाना।
5. स्कूलों, कालेजों, गाँवों तथा शहरों में कालेज द्वारा प्रशिक्षित प्रचारकों से आदर्श गुरमत समागम करवाना।
6. हर गुरसिख को अमृतपान करवा कर, खालसा जथेबन्दी गुरु पंथ का सदस्य बनाने हेतु अमृत संचार समागम करना।
7. सिख साहित्य की खोज करके, बच्चों तथा व्यस्कों के लिए छपवाकर लागत-मात्र मूल्य प्रचार हेतु बाँटना।
8. प्रकाशित सिख साहित्य को पंजाबी के अतिरिक्त हिन्दी, अंग्रेज़ी तथा अन्य प्रमुख भाषाओं में छपवा कर उपलब्ध करना।

सिख मिशनरी कालेज (रजि:)

1051, कूचा 14, फील्ड गंज, लुधियाना - 8 फोन : 663452

सब आफिस : A-143, फतह नगर, नई दिल्ली -18